ॐ

॥ श्रीवर्द्धमानाय नमः ॥

जैनधर्म शिक्षावली

पञ्चम भाग

लेखक

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम जी महाराज पंजाबी

प्रकाशक

ला० शिवप्रसाद अमरनाथ जैन

अम्बाला शहर

गौतम प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड मेरठ में

प० चन्द्रबल के प्रबन्ध से

छपवा कर प्रकाशित किया।

वि० सं० १९७९] [पहलीवार १०००

निवेदन ।

सर्व जैन प्रेमियों की सेवा में निवेदन है कि सौभाग्य से इस वर्ष का चतुर्मास श्री श्रीश्री १०८ गणावच्छेदक श्री स्थविर पदविभूषित स्वामी गणपतिरायजी महाराज श्रीश्री १०८ स्वामी जयरामजी महाराज श्रीश्री १०८ शालिगरामजी महाराज और श्रीश्री १०८ उपाध्याय आत्मारामजी महाराज का यहां, पर ही हुआ जिससे मैंने श्रीउपाध्यायजी महाराज से प्रार्थना की-कि महाराज जी ! जैन शिक्षावली न होने के कारण जैन पाठशालाओं में एक बड़ी त्रुटि है इसलिए एक जैन धर्म शिक्षावली पञ्चम भाग तक की अवश्य हो जानी चाहिए ताकि वह सर्व जैन पाठशालाओं में पढ़ाई जावे और उससे पूर्ण जैन शिक्षा उनको मिल सके तथा जैन पाठशालाओं की बड़ी त्रुटि जो इस समय में है वह दूर हो तब श्रीमहाराजजी ने आज्ञा दी कि यदि कुछ भाई भी इस कार्य में समय और सम्मति दें तो यह काम शीघ्र हो सकता है। तब मैंने इस कार्य में यथाशक्ति और यथा बुद्धि अपनी सम्मति प्रगट की। हर्ष का समय है कि उसी समय श्रीउपाध्यायजी महाराजजी ने इस को लिखना प्रारम्भ किया, जिस के चार भाग पहले तय्यार हो कर छप चुके हैं और प्रथम भाग आपके सामने है।

आशा है कि आप सज्जन इस को जैन पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में रख कर अपनी होनहार भावी सन्तान को जैन शिक्षित बनावेंगे।

निवेदक— फतुराम जैन, लुधियाना।

॥ नमः श्री वर्द्धमानाय ॥

प्रथम पाठ ।

(ईश्वर स्तुति)

प्रिय बालको ईश्वर 'सिद्ध' परमात्मा 'खुदा' 'रब्ब' 'गाड' (GOD) इत्यादि यह जो नाम हैं सब उस परमेश्वर के ही नाम हैं जो कि ससार के तमाम प्राणियों के भावों को जानता है परमात्मा सर्वज्ञ और अनंत शक्ति-मान होने से वह हमारे अन्दर के सब भावों के जानने वाला है हम जो भी पुण्य पाप करते हैं वे सब उसे ज्ञात हो जाते हैं इसलिये यदि कोई भी बुरा या अच्छा काम हम कितना ही छुपा कर भी करें मगर वह उस से छुपा नहीं रहता वह सब कुछ जानता है इसलिये सदा उसका ही स्मरण करो और कोई भी बुरा काम न करो ताकि तुम्हारी आत्मायें पवित्र हों ।

हे बालको यह भी याद रक्खो कि परमात्मा न किसी को मारता और न ही जन्म देता है और न ही वह

आप कच्छ मच्छ था और किसी रूप में खुद इस संसार में आता है वह तो इन बातों से निर्लेप है न ही उसका इस से कोई सम्बन्ध है वह परमात्मा तो एक रूप हमेशा सत चित आनन्द है ।

जो लोग यह कहते हैं कि वह जन्म लेता था अवतार-धारण करके इस संसार में आकर दुष्टों का नाश करता है वह सब उस से अज्ञात हैं ईश्वर का क्या आप स्पकता है कि वह इन झगड़ों में पड़े इस लिये यह कहना कि यदि कोई मरजावे कि हे ईश्वर तू ने क्या किया था इसको मार दिया यह महा पाप है जन्म मरण आदि जो भी सुख दुख संसार में जीव भोगते हैं यह सब अपने २ कर्मों के आधीन हैं इस में किसी का कोई चारा नहीं है इस लिये ईश्वर को ऐसे कामों में दोष देना उलटा पाप का भागी बनना है सो ऐसा मत कहो कि दुःख सुख ईश्वर ही देता है सुख दुख तो अपना केवल कर्तव्य ही है ऐसा समझ कर हे बालको नित्य प्रति ईश्वर का ही भजन करते रहो ताकि तुम्हें सच्चा सुख मिले उसका जाप करने से विघ्न दूर होजाते हैं शान्ति की प्राप्ति होती है । श्रेष्ठ आचार में आत्मा लग जाता है

मेस से उसको आत्म ज्ञान की प्राप्ति होजाती है सो इस लिये सिद्ध परमात्मा का ध्यान अवश्य करना चाहिये ।

द्वितीय पाठ

[गुरु भक्ति]

प्रियवर ! शान्तिपुर नगर के उपाश्रय में प्रातःकाल और सायंकाल में दोनों समय नगर निवासी प्रायः सब श्रावक लोग एकट्ठे होकर संवर, और सामायिक वा स्वाध्याय आदि धर्म क्रियाएं करते हैं जिस से उन लोगों को धर्म परिचय विशेष होरहा है स्वाध्याय के द्वारा हर-एक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होजाता है यथार्थ ज्ञान के होने पर धर्म पर दृढ़ता विशेष बढ़ जाती है स्वाध्याय करने वाला आत्मा उपयोग पूर्वक हर एक पदार्थ के स्वरूप को भली प्रकार से जान लेता है जब यथार्थ ज्ञान होगया तब उस आत्मा ने हेय, ज्ञेय, और उपादेय, के स्वरूप को भी जान लिया अर्थात् त्यागने योग्य, जानने योग्य. और ग्रहण करने योग्य, पदार्थों को जब जान गया

तब आत्मा सच्चरित्र में भी आरूढ़ होसकता है। अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

आज प्रातःकाल का समय है हर एक श्रमणोपासक अपने २ आसन पर बैठे हुए नित्यकर्म कर रहे हैं—कोई सामायिक कर रहा है कोई सम्वर के पाठ को पढ़ रहा है, कोई स्वाध्याय द्वारा अपने वा अन्य आत्माओं के संशयों को दूर कर रहा है।

इतने में बाबू कपूरचन्द्रजी जैन बी०ए० अपने किए हुए सामायिक के काल का पूरा हुआ मानकर सामायिक की आलोचना करके शीघ्र ही आसन को बांध कर तय्यार होकर चलने लगे तब बाबू-हेमचन्द्रजी ने पूछा कि—आप आज इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं तब बाबू कपूरचन्द्रजी ने प्रति वचन में कहा कि—क्या आप को मालूम नहीं है कि श्रीगुरु महाराज पधारने वाले हैं।

हेमचन्द्र ! जब गुरुमहाराज पधारने वाले हैं तो फिर आप इतनी शीघ्रता क्यों करते हो यहां पर ही ठहरिये ! जिस से गुरु महाराज जी के दर्शन भी हो जाएं।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज के दर्शनों के लिए ही शीघ्रता कर रहा हूं ।

हेमचन्द्र ! जब गुरु महाराज के दर्शनों की उत्कण्ठा है तो फिर शीघ्रता क्यों करते हो ।

कपूरचन्द्र ! गुरु महाराज की भक्ति के लिए ।

हेमचन्द्र ! गुरु महाराज की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए ।

कपूरचन्द्र ! जब गुरु महाराज पधारें तब आगे उनको लेने जाना चाहिए। जब वह पधार जाएं तब कथा व्याख्यान आदि कृत्यों में पुरुषार्थ करना चाहिए । जब वह आहार पानी के लिये कृपा करें तब उनको निर्दोष आहार देकर वा दिलवा कर लाभ लेना चाहिये। जब तक वह विराजमान रहें तब तक सांसारिक कार्यों को छोड़ कर उन से हर एक प्रकार के प्रश्नों को पूछ कर संशयों से निवृत्त हो जाना चाहिये। क्योंकि जब गुरु-महाराज जी से प्रश्नों के उत्तर न पूछे जाएं तो भला और कौन सा पवित्र स्थान है जिस से सन्देह दूर होसके।

हेमचन्द्र ! गुरु भक्ति से क्या होता है ।

कपूरचन्द्र । प्रियवर ! गुरु भक्ति से—धर्म प्रचार बढ़ता है परस्पर संप की वृद्धि होती है बहुत सी आत्माएं गुरु भक्ति में लग जाती हैं जिस से गुरु भक्ति की प्रथा बनी रहती है और कर्मों की, महा निर्जरा होजाती है अतएव ! गुरु भक्ति अवश्यमेव करनी चाहिये ।

हेमचन्द्र ! सखे ! जब गुरु इस उपाश्रय में पधार आएंगे तब पूर्वोक्त बातें हो सकती हैं तो फिर बाहिर जाने की क्या आवश्यकता है ।

कपूरचन्द्र ! वयस्य ! जब गुरु पधारें तब उनको आगे लेने जाना जब वह विहार करें तब उनका शक्ति अनुसार बहुत दूर तक पहुंचाने जाना इस प्रकार भक्ति करने से नगर में धर्म प्रचार होजाता है फिर बहुत से लोग गुरुओं को पधारे हुए जान कर धर्म का लाभ उठाते हैं इस लिये ! अब स्वामी जी के पधारने का समय निकट होरहा है हम सब श्रावकों को उनकी भक्ति के लिए आगे जाना चाहिए तब बाबू हेमचन्द्रजी ने सब श्रावकों को सूचित कर दिया कि—स्वामी जी महाराज पधारने वाले हैं अतः हम सब श्रावकों को उनकी भक्ति के लिए आगे जाना चाहिये ।

हेमचन्द्र जी के ऐसे कहे जाने पर सब श्रावक इकट्ठे होकर गुरु महाराज जी के लेने को आगे चले तब जो जो श्रावक मार्ग में मिलते जाते थे वह सब साथ होते जाते थे जब मुनि महाराज बहुत ही निकट पधार गये तब लोगों ने गुरु महाराज जी के दर्शनों से अपनी आंखों को पवित्र किया। तब बड़े समारोह के साथ गुरु महाराज बहुत से अपने शिष्यों के साथ जैन उपाश्रय में पधारगये।

वहां पीठ (चौकी) पर विराजमान होकर लोगों को एक बड़ी ही रमणीय जिनेन्द्र स्तुति सुनाई उसके पश्चात् अनित्य भावना के प्रतिपादन करने वाला एक मनोहर पद पढ़कर सुनाया गया जिसको सुन कर लोग संसार की अनित्यता देख कर धर्म ध्यान की ओर रुचि करने लगे तब मुनि महाराज जी ने मंगली सुनाकर लोगों को प्रत्याख्यान करने का उपदेश किया तब लोगों ने स्वामी जी के उपदेश को सुनकर बहुत से नियम प्रत्याख्यान किये।

फिर दूसरे दिन उपाश्रय में जब श्रावक लोग वा जैनेत्तर लोग इकट्ठ हुए तब मुनि महाराजजी ने धर्म

विषय पर एक बड़ा मनोहर व्याख्यान दिया जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि यह व्याख्यान क्या था मानों अमृत की वर्षा थी तब उपाश्रय में लोगों ने बैठ कर विचार किया कि यदि इस प्रकार के व्याख्यान पबलिक में हो जायें तब जैन धर्म की प्रभावना भी हो सकती है और लाभ हो जो लोग यहां पर नहीं आते उनको धर्म का लाभ भी हो सकता है।

जैन मण्डल ने इस सम्मति को स्वीकार करके नगर में पर्चों द्वारा सूचित किया कि प्रिय भ्रातृगण। हमारे शुभोदय से स्वामी जी
महाराज यहांपर पधारे हुए हैं और आज दिन २ बजे से लेकर चार बजे तक स्वामी जी का "मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है" इस विषय पर व्याख्यान होगा– अतः आप सर्व सज्जन जन व्याख्यान में पधार कर धर्म का लाभ उठाइए और हम लोगों का कृतार्थ कीजिये। जब इस प्रेस के पत्र नगर में वितीर्ण किएगये तब सैकड़ों नर वा नारियें नियत समय पर व्याख्यान में उपस्थित होगए। उस समय स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में मनुष्य जीवन के मुख्य दो उद्देश्य बतलाये–एक तो "सदाचार"

दूसरे "परोपकार" इन दोनों शब्दों की पूर्ण रीति से व्याख्या की" तब लोग बड़े प्रसन्न होते हुए स्वामी जी को चतुर्मास की विज्ञप्ति करने लगे परन्तु स्वामीजी ने इस विज्ञप्ति को स्वीकार नहीं किया तब लोगों ने कुछ व्याख्यानों के लिये अत्यन्त विज्ञप्ति की। स्वामीजी ने पांच व्याख्यान देने की विज्ञप्ति स्वीकार करली फिर उन्होंने धर्म विषय, अहिंसा विषय, स्त्री शिक्षा, विद्या विषय, कुरीतिनिवारण विषय, इन पांचों विषयों पर पृथक् २ दिन दो २ घंटे प्रमाण व्याख्यान दिये जिन को सुनकर लोग मुग्ध होगये बहुत से लोगों ने उन व्याख्यानों से अतीव लाभ उठाया। बहुत से लोगों ने स्वामी जी से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछकर अपने २ संशयों को दूर किया।

जब स्वामी जी के विहार करने का समय निकट आगया तब स्वामी जी ने विहार कर दिया उस समय सैंकड़ों लोग भक्ति के वश होते हुए स्वामीजी को पहुंचाने के वास्ते दूर तक गये। फिर स्वामीजी ने वहां पर भी उन लोगों को अपने मधुर वाक्यों से "प्रेम" विषय पर एक उत्तम उपदेश सुनाया और उसका फलादेश भी वर्णन किया

जिसको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न होते हुये। स्वामी जी को वंदना नमस्कार करके अपने २ स्थानों में चले गए।

मित्र वरो ! गुरु भक्ति इसी का नाम है जिसके करने से धर्म प्रभावना और कर्मों की निर्जरा होजावे।

अनेक आत्मायें धर्म से परिचित होजावें। सो गुरु भक्ति सदैव करनी चाहिये गुरुओं का ध्यान भी अपने मन में सदैव रखना चाहिये जैसेकि जिस दिन गुरु देवों ने जिस नगर से विहार किया था उसी दिन से ध्यान रखना कि वह कब तक यहां पधार जायेंगे। यदि किसी कारण वश से वह नियत समझे हुए समय पर न पधार सकें तब किसी द्वारा उनका समाचार लेना। उसके अनुसार गुरु देव की फिर सेवा भक्ति करनी यह नियम प्रत्यक गृहस्थ का होना चाहिये।

यद्यपि ! गुरु देव अपनी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी काम नहीं करवाते किन्तु गृहस्थों के सदा भाव उनके दर्शनों के बने रहने चाहियें। और उनके मुख से जिन वाणी सुनने के भी भाव सदैव होने चाहियें। सो यही गुरु भक्ति है।

तृतीय पाठ

(जैन सभा विषय

वर्द्धमान नगर के एक विशाल चौक में वड़ा ऊंचा एक भवन बना हुआ है जो कि उस बाजार में पहिले वही दृष्टि गोचर होता है उस समय "शान्ति प्रशाद" श्रावक नगर में भ्रमण करता हुआ वहां पर ही आ निकला जब उस स्थान के पास गया तब उसने एक मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ साइनबोर्ड (Sign-board) देखा जब उसने उसको पढ़ा तब उसको मालूम होगया कि— यह जैन सभा का स्थान है क्योंकि—"साइनबोर्ड" पर लिखा हुआ था कि—

"श्री श्वेताम्बर (स्थानक वासी जैन सभा)"

"उसी समय शान्ति प्रशाद ने विचार किया कि" चलें ऊपर चल कर देखें कि इस नगर की जैन सभा की क्या व्यवस्था है इस प्रकार विचार करके वह ऊपर चला गया तब वह क्या देखता है कि जैन सभा के

सभासद बैठे हुए थे और बहुत से लोग जैन वा अजैन भी आ रहे हैं सभापति जी भी अपने नियत स्थान पर बैठे हुए हैं। सभा भवन भी सुसज्जित हो रही है 'मेज' और 'कुरसी' भी लगी हुई है और "मेज" पर बहुत सी पुस्तकें रक्खी हुई हैं। तब शान्ति प्रसाद ने पूछा कि— इस सभा के नियम क्या २ हैं और सभासद वा पदाधिकारी कितने हैं। उस समय सभापति ने उत्तर में कहा कि—यह सभा साप्ताहिक है जो प्रत्येक रविवार के दिन के ६ः बजे लगती है और सभापति "उपसभापति" "मन्त्री" "उपमन्त्री" "कोशाध्यक्ष" प्रचार महाशय" इत्यादि सभी पदाधिकारी हैं और दो सौ के अनुमान सभासद हैं सभा की ओर से एक "जैन पाठशाला" भी खुली हुई है और एक "उपदेशक क्लास भी है" जिसमें अनेक उपदेशक तय्यार करके धार्मिक धर्म प्रचार के लिए भेजे जाते हैं उन्हों के धर्म प्रचार के आये हुए पत्र प्रत्येक रविवार को सर्व सज्जनों को सुनाए जाते हैं और सभा का आय (लाभ) और व्यय (खर्च) भी सुनाया जाता है।

सभा में अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये जाते

हैं इतनी बातें होते ही सभा का काम आरम्भ किया गया सभा की भजन मण्डली ने बड़े सुन्दर भजन गाने आरम्भ करदिये जिनको सुनकर प्रत्येक जन हर्षित होता था। भजनों के पश्चात् सभापति अपने नियत किये हुये आसन पर बैठ गये। तब मंत्री जी ने बाहिर से आये हुये पत्रों को पढ़कर सुनाया जिनमें दो पत्र अतीव उपयोगी थे वह इस प्रकार सुनाये गये।

श्रीमान् मन्त्री जी जय जिनेन्द्र देव !

विनय पूर्वक सेवा में निवेदन है कि—आप की सभा के उपदेशक पण्डित .... साहिब कल दिन यहां पर पधारे उन का एक आम (प्रकट) व्याख्यान करवाया गया अन्यमतावलम्बियों के साथ ईश्वर कर्तृत्व विषय पर एक बड़ा भारी संवाद हुआ नियम विषय पूर्वक प्रबन्ध किया हुआ था उन की ओर से दो सन्यासी पूर्व पक्ष में खड़े हुए थे हमारे पण्डित जी उत्तर पक्ष में खड़े हुए थे सात दिन तक नियम बद्ध शास्त्रार्थ होता रहा अंत में उन सन्यासियों ने इस पूर्व पक्ष को उपस्थित किया कि फल प्रदाता ईश्वर

एव आप के उपदेशक फंड को दान दिये हैं वा भेजे जावे, कृपया पहुंच से कृतार्थ करें।

भवदीय—

मन्त्री—मणि द्वीप—

जब मन्त्री जी ने इन दोनों पत्रों को सुना दिया तब लोगों ने अति हर्ष प्रकट किया तब सभापति ने धर्म प्रचार-विषय पर एक मनोहर व्याख्यान दिया जिस को सुन कर लोग अति प्रसन्न हुए। तदनु सभा की भजन मण्डली ने एक मनोहर जिन स्तुति गाकर सभा का साम्वत्सरिक महोत्सव समाप्त किया। इस महोत्सव को देख कर शान्ति प्रसाद भी बड़े प्रसन्न हुए और यह मन में निश्चय किया कि—हम भी अपने नगर में इसी प्रकार अनुकरण करते हुये धर्म प्रचार करेंगे॥

चतुर्थ पाठ

(भवन जैन कन्या पाठ शाला)

आनन्द पुर नगर के एक बड़े पश्चिम मोहल्ला में जैन कन्या पाठ शाला का स्थान है यहां लौकिक वा धार्मिक

दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती है साथ ही शिल्पकला भी योग्यता पूर्वक सिखलाई जाती है इस पाठशाला में सुयोग्य अध्यापकाऐं काम करती हैं कन्याओं की संख्या १०० सौ की प्रति दिन हो जाती है।

नगर में इस पाठ शाला की शिक्षा विषय चर्चा फैली हुई है कि—जैसी इस पाठ शाला की पढ़ाई वा प्रवन्ध है ऐसा और किसी पाठ शाला का प्रवन्ध नहीं है।

प्रायः हर एक कन्या वार्षिक महोत्सव में पारितोषिक लेती है और विदुषी वन कर यहां से निकलती हैं।

आज पाठशाला के वार्षिक महोत्सव का दिन है प्रत्येक कन्या अपने पवित्र वेष को धारण करके आ रही हैं चारों ओर झंडियें लगी हुई हैं पाठ शाला में "दया सूचक" वैराग्य प्रदर्शक 'मनोरंजक" अनेक मनोहर चित्र लटक रहे हैं पाठ शाला के कर्मचारी—सभा पति आदि भी वैठे हुए हैं तव उसी समय "जिनेन्द्रकुमार" और "देवकुमार" दोनों मित्र भी वहां पहुंच गए आपने

श्रीयुत मन्त्री जी की आज्ञा लेकर पाठ शाला में प्रवेश किया जब आप ने उस भवन को देखा तब आप चकित हो गए और उन कन्याओं की योग्यता देख कर बड़े ही प्रसन्न हुए—सैकड़ों कन्याएं जिनस्तुति मनोहर स्वर से गा रही हैं बहुत सी कन्याएं धर्म शास्त्र की पढ़ाई से पारितोषिक ले रही हैं श्री भगवान् महावीर स्वामी की जय बोल रही हैं।

नाटक समाप्त होने के पीछे एक "सरस्वती" नाम वाली कन्या ने जिनेन्द्र स्तुति पढ़ी है परन्तु इसी स्तुति में मनुष्य जीवन के उद्देश का फोटू (चित्र) खींच दिया है जिस से उसने बड़ा पारितोषिक भी प्राप्त किया है इस के पश्चात् एक कन्या पद्मावती ने खड़े होकर स्त्री समाज की ओर लक्ष्य देकर निम्न प्रकार से अपने मुख से उद्गार निकाले, जैसे कि—

देवी प्यारी बहनो! आपको यह भली भांति मालूम ही है कि—आज एक महा शुभ दिन है जो प्रति वर्ष में यह दिन एक ही बार आता है इसमें हमारी वार्षिक परीक्षा ली जाती है हम समाज की वर्तमान में जो दशा

होरही है वह अवश्य शोचनीय है कारण कि हमारी स्त्री समाज अशिक्षित प्रायः बहुत है इसी कारण से वह अवनति दशा को प्राप्त हो रही है जो पूर्व समय में जिस स्त्री को रत्न कहा जाताथा आज वह स्त्रीस्त्रीसमाज में भार रूप हो रही है उसका मूल कारण यह है कि-मेरी बहनें ! अपने कर्तव्यों को भूल गई हैं केवल 'रोष' 'पति से लड़ाई' 'अति तृष्णा सासू से विरोध' तथा जो पड़ोसी हैं उनसे अनमेल सदा रखती हैं-सारा दिन घर के काम काज को छोड़ कर व्यर्थ निंदा, चुगली, हर एक बात में छल व झूठ इत्यादि व्यर्थ बातों से दिन व्यतीत करती है।

जो शास्त्रीय शिक्षाओं से जीवन पवित्र बनाना था उन को छोड़ ही दिया है भला पति से कलह तो रहता ही था साथ ही जो संतान उत्पन्न हुई है उस के साथ भी वर्ताव अच्छा देखने में कम आता है जैसे-पुत्रों को अयोग्य, गालियें देना, कन्याओं को असभ्य वचन बोलने, गर्भ रक्षा की यह दशा देखने में आती है कि-चुल्ले की मिट्टी, कोयले, रवाहा, कारेक, पवित्र पदार्थों

के स्थान पर घर खाने में आते हैं, सारा दिन भैंस की तरह खेटे रहना यदि शिक्षा दी जावे तो लड़ाई करने में सीख ही क्या है।

कभी वह समय था कि–हमारी बहनें! पति का साथ देती थीं सासू सुसरे को सेव को नाई पूजती थी। घर की लक्ष्मी कहलाती थी, सुख दुःख में सहायक बनती थीं, उनकी कृपा से घर एक स्वर्ग की उपमा को धारण किए रहता था।

यदि पति किसी कारण से घबराहट में भी आ जाता था तो वह घर में आकर स्वर्गीय आनन्द मानता था। आज यदि पति घर में शान्ति धारण किए हुए भी आता है तो घर में आते ही भाड़ की आग के समान तप हो जाता है। कारण कि–हमारी बहनें! आज कल खान पान की भूखी हैं। वस्त्रों की भूखी हैं। आभूषणों की भूखी हैं। एकान्त रहन की भूखी हैं। पान की भूखी हैं। इतना ही नहीं किन्तु लड़ाई की भूखी तो बहुत ही हैं। जिस से घर बाहर या सुरस्ते वाले सब तंग आ गए हैं यह सब कारण हमारा समाज के अवनति के ही हैं!

जब लौकिक कार्यों में ऐसी दशा है तो भला धर्म वेषय तो कहना ही क्या है। जैसे कि—घर के काम काज में बिना देखे न करने चाहिएं। खान पान के पदार्थ भी बिना देखे ग्रहण न करने चाहिएं। जैसे कि—मेरी बहुत सी बहनें ! दाल, शाक, वा चुन्न, आदि के पकाते समय, काड़ी, सुसरी, आदि जीवों को न देखती हुई उन्हें भी शाक आदि पदार्थों के साथही प्राणों से वियुक्त करदेती है। जिस से खाना ठीक नहीं रहता और कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः मेरी प्यारी बहनो ! हमें हर एक कार्य में सावधान रहना चाहिये। हमारा पतिव्रत धर्म सर्वोत्कृष्ट है जैसे हर एक प्राणी को अपने जीवन की इच्छा रहती है। उसी प्रकार हम को अपना जीवन भी पवित्र बनाना चाहिये। जिससे कि—हम औरों के लिये आदर्श रूप बन जायें। पवित्र जीवन धर्म से ही बन सकता है सो हम को धर्म कार्यों में आलस्य न करना चाहिये। बल्कि—सम्वर,—सामायिक, प्रतिक्रमण पौषध, दया, आदि शुभ क्रियाएं करनी चाहियें मुनि महाराजों के वा साध्वियों के, नित्यप्रति दर्शन करने चाहियें और उन के व्याख्यान नियम

पेक सुनने चाहियें—जो मिथ्यात्व के कर्म हैं जैसे—शीतला पूजन, देवी पूजन, मढ़िया पूजन, श्राद्ध कर्म, इत्यादि कर्मों से चित्त हटाना चाहिये। पुत्र जन्म, विवाह इत्यादि शुभ कार्यों में जो धार्मिक संस्थाओं को दान दिये जाते हैं साथ ही रजो हरण, वा रजो हरणी, मुख वस्त्रिका, आसन, माला, इत्यादि धार्मिक उपकरणों का दान भी करना चाहिये जिस से धार्मिक कार्य सुख पूर्वक हो सकें। फिर सामायिकादि कर के बहु समय स्वाध्याय वा ध्यान में ही लगाना चाहिये। मुझे शोक से कहना पड़ता है कि—मेरी बहुत सी बहनें। नवकार मन्त्र का पाठ भी नहीं जानतीं हैं। और साधु वा आर्याओं के दर्शन तक भी नहीं करतीं इस लिये। मैं और कुछ न कहती हुई अपनी प्यारी बहनों से अन्तिम यही प्रार्थना कर के बैठती हूं कि—आप अपना पवित्र जीवन शास्त्रीय शिक्षाओं से अलंकृत करें। जिस से हम औरों के लिये आदर्श बन जायें क्योंकि—श्री भगवान् ने हम को चारों तीर्थों में एक तीर्थ रूप बतलाया है जैसे कि—साधु, साध्वी, श्रावक, और श्राविका, सो हम को तीर्थ ही बनना चाहिये।

जब पद्मावती देवी का भाषण हो चुका तब श्रीमती विद्यावती देवी ने इस भाषण का अनुमोदन किया अनुमोदन क्या था वह एक प्रकार का पवित्र पुष्पों का हार गुंथा हुआ था। उस के पश्चात् "शान्ति देवी" उठ कर इस प्रकार कहने लगी। कि—मेरी प्यारी बहनों वा माताओ! मैं आप का अधिक समय न लूंगी मैं अपनी वक्तृता को शीघ्र पूर्ण करूंगी—क्योंकि—श्रीमती "पद्मावती" देवी ने जो कुछ स्त्री समाज का दिग्दर्शन कराया है वह बड़े ही उत्तम शब्दों में और संक्षेप में वर्णन किया है जिस का सारांश इतना ही है कि—हमें गृहस्था वास में रहते हुए प्रेम से जीवन निर्वाह करना चाहिये जैसे एक राजा ने अपनी सुशीला कुमारी से पूछा। कि—हे पुत्री! मैं तुम्हारा विवाह संस्कार करना चाहता हूं किन्तु मुझे तीन प्रकार के वर मिलते हैं जैसे कि—रूपवान्! विद्वान्! और धनवान्! इन तीनों में से जिस पर तेरा विचार हो सो तू कह तब कन्या ने इस के उत्तर में कहा कि—हे पिता जी मुझे तीनों की इच्छा नहीं है। तब पिता ने फिर कहा कि—हे पुत्री! तेरी इच्छा किसपर है। उसने फिर प्रतिवचन में कहा कि—

पिता भी । या मेरे से "प्रेम" करे मुझे तो उसी की इच्छा है" या इस कहानी का सारांश इतना ही है कि— हर एक कार्य प्रेम से ठीक बन सकता है—प्रेम से ही" यह संस्था कार्य कर रही है इस का हिसाबकिताब इस प्रकार से है इसतरह संस्था का पूर्ण वृतान्त कह चुकने पर शान्ति देवी ने यह भी कहा कि—हमें जो स्त्रियां किसी प्रकार का दान पुत्र उत्पन्न होने पर या विवाह अथवा मृत्यु आदि संस्कारों या सम्वत्सरी आदि पर्वों पर देती हैं "हम उनसे सामायिक करने की "पाथियां" "आनु पूर्वियां" "आसन" "रजोहरनियां" "मुखवस्त्रिकायें" पाक्षा" आदि मंगवा कर स्त्रियों में ही बांट देती हैं" और जो जैन विधवा" बहनें जो कि—हरतरह से अशक्त हैं उनका सहा- यतार्थ कुछ दे देती हैं इस प्रकार यह संस्था काम कर रही है सो जिस बहन को चाहिये वह धर्म पुस्तकें और सामायिक करने का सामान ले सकती है और जो जैन विधवा तथा सहायता के योग्य हो उन का पता हमें देकर उसको सहायता पहुंचा सकती हैं इस प्रकार शान्ति देवी के कह चुकने पर फिर सभापति ने यथा योग्य सब कन्याओं को पारितोषिक देकर वार्षिक महोत्सव समाप्त

किया जय ध्वनि के साथ पहोत्सव मनाया गया इस दृश्य को देखकर जिनेन्द्र कुमार" वा" देव कुमार" बड़ेही प्रसन्न हुए और उन्हों ने निश्चय किया कि हम भी अपने नगर में इसी प्रकार जैन कन्या पाठशाला स्थापन करके धर्मोन्नति करें क्योंकि धर्मोन्नति करने का यह बड़ा ही उत्तम मार्ग है इस के द्वारा धर्म प्रचार भली भांति से हो सकता है।

पांचवा पाठ

(जैन सूत्रानुसार मुहूर्तादि के नाम)

प्रियवरो ! समय विभाग करने के लिये गणित विद्या की आवश्यकता पड़ती है सो गणित विद्या का नाम ही ज्योतिषः शास्त्र है यद्यपि गणित एक साधारण शब्द है किन्तु जब खगोल विद्या की ओर ध्यान दिया जाता है तब चांद सूर्य ग्रह आदि की गमन क्रिया की गणित द्वारा काल संख्या मानी जाती है, फिर उन ग्रहों की राशिए आदि के देखने से गणित के द्वारा शुभाशुभ फल का ज्ञान भी हो जाता है परन्तु यह बड़ा गहन विषय है किन्तु यहां पर तो केवल मुहूर्त्त आदि के ही सूत्रानुसार नाम

दिए जाते हैं जिस से मन मासादि के नाम विद्यार्थियों के कण्ठास्थ हो जाएं । दिन रात के तीस मुहूर्त होते हैं (मुहूर्त दो घड़ी के काल का नाम है) उनके निमित्त क्रियानुसार नाम बतलाए गए हैं । जैसे कि—रौद्र १ श्रेयान् २ मित्र ३ वायु ४ सुपीत ५ अभिचन्द्र ६ माहेन्द्र ७ बलवान् ८ ब्रह्मा ९ बहुसत्य १० ईशान ११ त्वष्टा १२ भावितात्मा १३ वैश्रमण १४ वारुण १५ आनन्द १६ विजय १७ विश्वसेन १८ प्राजापत्य १९ उपशम २० गन्धर्व २१ अग्निवेश्य २२ शतवृषभ २३ आतपवान् २४ अमम २५ ऋणवान २६ भौम २७ वृषभ २८ सर्वार्थ २९ राक्षस ३० इस प्रकार तीस मुहूर्तों के नाम बतलाए गए ।

एक पक्ष के पंचदश दिन होते हैं सो पंचदश दिवसों के नाम यह हैं जैसे कि—पूर्वांग १ सिद्धमनोरम २ मनोहर ३ यशो भद्र ४ यशोधर ५ सर्वकाम समृद्ध ६ इन्द्र मूर्द्धाभिषिक्त ७ सौ मनस ८ धनञ्जय ९ अर्थसिद्ध १० अभिजात ११ अत्यशन १२ शतञ्जय १३ अग्नीवेश्या १४ उपशम १५ यह दिवसों के नाम हैं तब पंच दश रात्रियों के नाम भी होने चाहिए इस न्याय को अवलम्बन करके उन रात्रियों के नाम इस प्रकार से बतलाए हैं

जैसे कि– उत्तमा १ सुनक्षत्रा २ एलापत्या ३ यशोधरा ४ सौमनसी ५ श्री सम्भूता ६ विजया ७ वैजयन्ती ८ जयन्ति ९ अपराजिता १० इच्छा ११ समाहारा १२ तेजा १३ अति तेजा १४ देवानन्द्रा १५ ।

इस प्रकार वर्णन करते हुए साथ में यह भी वर्णन कर दिया है कि दिन और रात्रियों की तिथीयें भी होती हैं वह इस प्रकार से हैं जैसे कि दिवसों की तिथियें यह हैं । नन्दा १ भद्रा २ जया ६ तुच्छा ४ पूर्णा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पंच दश दिवस तिथियें होती हैं ।

पंच दश रात्रि तिथियें यह हैं जैसे कि–अग्रवती १ भोगवती २ यशोमती ३ सर्वसिद्धा ४ शुभनामा ५ इन को तीन वार गिनने से यही पंच दश रात्रि तिथियें कही जाती हैं । और एक वर्ष के बारह मास होते हैं उनके नाम दो प्रकार से कथन किए गए हैं जैसे कि–लौकिक– और लोकोत्तर–जो लोक में सुप्रसिद्ध हैं उन्हें लौकिक नाम कहते हैं जो केवल शस्त्रों में ही प्रसिद्ध हैं उन्हीं का नाम „लोकोत्तर,, नाम है । सो लौकिक नाम बारह

मासों के यह हैं जैसे कि—श्रावन १ भाद्रव २ आश्विन ३ कार्तिक ४ मृगशीर्ष ५ पोष ६ माघ ७फाल्गुण ८ चैत्र ९वैशाख १० ज्येष्ठ ११ आषाढ़ १२ अपितु लोकोत्तर नाम यह हैं जैसे कि—अभिनन्द १ सुप्रतिष्ट २ विजय ३ प्रीतिवर्द्धन ४ श्रेयान् ५ शिव ६ शिशिर ७ हैमवान् ८ वसन्त मास ९ कुसुम संभव १० निदाघ ११ वन विरोधी (वन विरोध) १२ यह बारह मास लोकोत्तर कहे जाते हैं अपितु सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के दशवें प्राभृत के उन्नीसवें प्राभृत प्राभृत की टीका में लिखा है कि—"प्रथमः श्रावणारूपोमासः अभिनन्दः" इत्यादि इस कथन से यह सिद्ध होता है कि—जिस को लोक पक्ष में श्रावण मास कहते हैं उसी को जैन मत में "अभिनन्द" नाम से लिखा है इसी क्रम से हर एक मास के विषय में जानना चाहिये।

जो कि नीचे दिये हुये कोष्ठक से जान लीजिये।

लौकिक मास	जैन मास
१ श्रावण	१ अभिनन्द
२ भाद्रपद	२ सुप्रतिष्ठ
३ आश्विन	३ विजय
४ कार्तिक	४ प्रीतिवर्द्धन
५ मृगशीर्ष	५ श्रेयान्
६ पौष	६ शिव
७ माघ	७ शिशिर
८ फाल्गुण	८ हैमवान्
९ चैत्र	९ वसन्त मास
१० वैशाख	१० कुसुम संभव
११ ज्येष्ठ	११ निदाघ
१२ आषाढ़	१२ वन विरोधी— वा वन विरोध

और जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति में—"अभिनन्द" के स्थान में "अभिनन्दित" कहा गया है "वनविरोधी" के स्थान

पर "वनविरोह" "वनविरोप" इस प्रकार से किया गया है परन्तु "अभिनन्दित" श्रावण मास का ही लोकोत्तर नाम वर्णन किया हुआ है जैसे कि—"प्रथमः श्रावणो अभिनन्दित" द्वितीयः प्रतिष्ठित इत्यादि श्रावण मास को ही अभिनन्द वा अभिनन्दित कहते हैं इसी प्रकार भाद्रव को कहा जाता है बारह मासों के नाम इसी प्रकार जानने चाहिये। लौकिक मास नक्षत्रों के आधार पर बने हुए हैं जैसकि—श्रावण नक्षत्र के कारण से "श्रवण" "भाद्रपद से" "भाद्रव" इत्यादि किन्तु लोकोत्तर मास ऋतुओं के आधार पर कहे हुए हैं जैसे प्रावृट् ऋतु के दो मास इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के दो दो मास गिन कर बारह मास हो जाते हैं।

यद्यपि आज कल सम्वत्सर का आरम्भ चैत्र मास से किया जाता है परन्तु प्राचीन समय में सम्वत्सर का आरम्भ श्रावण मास से होता था इस का कारण यह था कि—प्राचीन समय में सायन पक्ष के अनुसार कार्य होता था जैसे कि—जब सूर्य दक्षिणायण होते थे तब ही सम्वत्सर का आरम्भ हो जाता था और "रवि" सोम"

मंगल" बुध" बृहस्पति" शुक्र" शनैश्चर" इन वारों का प्राचीन ज्योतिष् शास्त्रों में नाम नहीं पाया जाता परन्तु जो अर्वाचीन काल के ग्रन्थ बने हुये हैं उन्हों में इन वारों का उल्लेख अवश्य किया हुआ है इस का कारण विद्वान् लोग यह बतलाते हैं कि—जब से हिन्दुस्तान में यवन लोगों का आगमन हुआ है तभी से इन वारों का इस देश में प्रचार हुआ है।

पहिले के लोग दिनों वा तिथियों से ही काम लिया करते थे। और जो चांद वा सूर्य को ग्रहण लगता है उसका कारण यह है जैन शास्त्रों में दो प्रकार के राहू वर्णन किए गए हैं जैसे "कि—नित्य राहु" और पर्व राहु नित्यराहु तो चांद के साथ सदैव काल रहता है जो कृष्ण पक्ष में चांद की कला को आवरण करता जाता है शुक्ल पक्ष में कलाओं को छोड़ देता है उसी के कारण से कृष्ण पक्ष वा शुक्ल पक्ष कहे जाते हैं। पर्व राहु चांद वा सूर्य दोनों को ही लग जाते हैं राहु का विमान कृष्ण रंग का है इस लिए उस की छाया उन्हों पर जा पड़ती है लोग कहते हैं चांद वा सूर्य को ग्रहण लग गया है किन्तु

"लोग भाषा में" ग्रहण कहा जाता है वास्तविक में। "राहु" के विमान की प्रतिच्छाया ही होती है और इस नहीं होता सो लोग यह कहते है कि। चांद मखली है इस लिए राहु उस को पकड़ता है वा पृथ्वी की छाया चांद वा सूर्य पर पड़ती है इस लिए चांद वा सूर्य को लोग वस में ग्रहण लग गया ऐसे कहा जाता है सो यह कथन जैन सूत्रानुसार प्रमाणिक नहीं है सूत्रों में तो एक ही कथन का स्वीकार किया गया है विद्यार्थियों को योग्य है कि-वेद जैन शास्त्रादि को स्मरण करके वो अपने मतोंक में लावें का रण कि-जब इतर लोग वा पवन लोगों के शास्त्रों के साथ दाम में लाए जाते हैं तो भला अपने श्री जिनेन्द्र देव के प्रति पादन किए हुए जैन शास्त्रों के नाम क्यों न व्यवहार में लाने चाहिए। अपितु अवश्य में नहीं लाने चाहिए॥

और यदि सम्पूर्ण जोतिष चक्र का स्वरूप जानना होवे तो। "चन्द्रप्रज्ञप्ति," "सूर्य प्रज्ञप्ति" जंबू "द्वीपप्रज्ञप्ति", "विवाह व्याख्याप्रज्ञप्ति" इत्यादि शास्त्रों का नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिए॥

छटा पाठ

साधु वृत्ति

सज्जनों तुम भली प्रकार जैन धर्म शिक्षावली के
थे भाग में गृहस्थ सम्बन्धी गृहस्थों का धर्म क्या है पठन
र चुके हो मगर अब तुम्हें हम यहां पर चंद बातें मुनियों
धर्म के बारे में बतलावेंगे यद्यपि मुनियों की भी कुछ
त्ति उसी भाग में दरशा चुके हैं तोभी मोटी २ आवश्यक
ातें मुनियों सम्बन्धी जानने योग्य फिर यहां पर लिखते हैं।

यह बात तो संसार में निःविवाद प्रायः सिद्ध ही है
5 जैन मुनियों जैसी अहिंसक और सच्ची साधु वृत्ति
न्य साधुओं में नहीं है जैन साधु जब से जैन मुनि का
ष धारण करते हैं तब से ही हर प्रकार के कष्टों को
हन करते हुये केवल धर्म क्रिया और संसार के उपकार
लिये ही अपने जीवन को व्यतीत करते हैं लोग प्रक-
र उन्हें मत द्वेष के कारण से तरह तरह के निरमूल
ाप देते और उन्हें अप शब्द भी कहते हैं परन्तु यह शांत

रहते हुये हमें भी धर्म का ही उपदेश देते हुये अपने ४ महाव्रत रूप धर्म का पालन करते हैं जो इन्हों के लिये जैन सूत्रों में बतलाये गये हैं, क्योंकि हर एक जीव शान्ति की खोज में लगा हुआ है अपनी समाधि की इच्छा रखता है किन्तु पूर्ण ज्ञान न होने के कारण से भेद पृथक् २ मार्गों का अवलम्बन करते हैं।

जैसे किसी ने शान्ति या "समाधि" धन की प्राप्ति होने में ही समझी हुई है इसी लिये वह सदैव धन एकत्र करने में ही लगा हुआ है किसी ने समाधि विषय विकार में मानी हुई है इस लिये "वह काम भोगों में आसक्त हो रहा है" किसी ने समाधि अपने परिवार की वृद्धि ही में मानली है अतः वह इसी धुन में लगा हुआ है "किसी ने समाधि" सांसारिक कलाओं के जानने में मानली है सो वह उसी कला के ध्यान में लगा रहता है तथा किसी ने 'व्यापार" जूआ" मांस" मदिरा" शिकार" वेश्यासंग" पर स्त्री सेवन" चोरी" इत्यादि कर्मों में ही सुख मान लिया है इस लिये वेह पूर्वोक्त कामों में ही लगे रहते हैं या बहुत से लोगों ने अनार्य

क्रियाओं के करने में ही वास्तविक में शान्ति समझी है इसी लिये वेह अनार्य कर्मों में ही लगी रहते हैं।

वास्तव में उन लोगों ने पूर्ण प्रकार से शान्ति के मा को जाना नहीं इस लिये वेह शान्ति की खोज में भटकते फिरते हैं क्योंकि—आशावान् को समाधि कभी भी नहीं प्राप्त हो सक्ती है जब समाधि की प्राप्ति होगी "निराश को होगी" क्योंकि—संसार में आशा का ही दुःख है जब किसी पदार्थ की आशा ही नहीं तो भला दुःख कहां से उत्पन्न हो सकता है।

निराश आत्मा ही शान्ति को आनन्द का अनुभव कर सकत हैं, अपितु संसार पक्ष से निराश होना चाहिए धर्म पक्ष से नहीं किन्तु धर्म पक्ष में वह सदैव कटिबद्ध रहता है—

सर्व संसार के बन्धनों से छूटा हुआ भिक्षु जिस आनन्द का अनुभव कर सकता है उस आनन्द के शतांशवें भाग का चक्रवर्ती राजा भी अनुभव नहीं कर सकता।

क्योंकि—साधु योग मुद्रा द्वारा अपनी आत्मा का अनुभव या दर्शन करता है आत्मा के दर्शन करने के लिए उस मुनि को पांच समिति" तीन गुप्तियें भी साधन रूप धारण करनी पड़ती है।

पांच महाव्रत निम्न प्रकार से हैं॥

अहिंसा महाव्रत

प्राणी मात्र से प्रीति (मैत्री) करने के लिए और सब जीवों की रक्षा के वास्ते श्री भगवान् ने "प्राणातिपात विरमण" महाव्रत प्रति पादन किया है इसका भाव यह है कि—साधु मन वचन और काय से हिंसा करे नहीं औरों से हिंसा करावे नहीं हिंसा करने वालों की अनुमोदना भी न करे यह अहिंसा व्रत सर्वोत्कृष्ट महाव्रत है जिसने इस का ठीक पालन किया वह आत्मा अपना सुधार कर सकता है वह सब का हितैषी है अहिंसा प्राणी मात्र का माता है इस की कृपा से अनंत आत्मा मोक्ष होगए हैं वर्तमान में बहुत सा आत्मा मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं भविष्यत काल में अनंत आत्मा मोक्ष प्राप्त करेंगे जिस का शुभ वा

मित्र परसमय भाव होता है अहिंसा धर्म पालन करने वाले प्राणी की यही पूर्ण परीक्षा है कि–यदि हिंसक जीव भी उसके पास चले जावें तो वेह अपने स्वभाव को छोड़ कर दयालु भाव धारण कर लेते है ।

सत्य महाव्रत--

अहिंसा महाव्रत को पालन करते हुए द्वितीय सत्य महाव्रत भी पालन किया जाता है जिस आत्मा ने इस महाव्रत का आश्रय ले लिया है वह सर्व कार्यों में सिद्धि कर सकता है क्योंकि 'सत्य में सर्व विद्या प्रतिष्ठित हैं सत्य आत्मा का प्रदर्शक है तथा आत्मा का अद्वितीय मित्र है इस की रक्षा के लिए ! क्रोध–भय–लोभ–हास्य इन कारणों को छोड देना चाहिए । साधु मन वचन काय से मृषा वाद को न बोले न औरों से बोलाए जो मृषावाद (झूठ) बोलते हैं उनकी अनुमोदना भी न करे क्योंकि असत्य वादी जीव विश्वास का पात्र भी नहीं रहता अतएव ! इस महाव्रत का धारण करना महान् आत्माओं का कर्तव्य है ।

दत्त महाव्रत

सत्य को पालन करते हुए चौर्य परित्याग तृतीय महा व्रत का पालन भी सुख पूर्वक हो सकता है पर महाव्रत शूर वीर आत्मा ही पालन कर सकते हैं बिना आज्ञा किसी वस्तु का न उठाना यही इस महा व्रत का मुख्य कार्य है किसी स्थान पर कोई भी साधु के लेने योग्य पदार्थ पड़ा हो उस बिना आज्ञा न ग्रहण करना इस महाव्रत का यही मुख्योपदेश है मन वचन काय से आप चोरी करे नहीं औरों से चोरी कराए नहीं चोरी करने वालों की अनु मोदना भी न करे तथा चोरी करने वालों की जो दशा लोक में होती है वह सब के प्रत्यक्ष है इस लिए साधु महात्मा इस महा व्रत का विधि पूर्वक पालन करते हैं।

ब्रह्मचर्य महाव्रत।

उक्त महा व्रत का पालन ब्रह्मचारी ही पूर्णतया कर सकता है इस लिये चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत कथन किया गया है ब्रह्मचारी का ही मन स्थिर हो सकता है ब्रह्म चारी ही उत्तम अवस्था में अपने आत्मा को बना सकता है।

सर्व अधर्मों का मूल मैथुन ही है इसका त्याग करना शूरवीर आत्माओं का ही काम है इस से हर एक प्रकार की शक्तियें (लब्धियें) प्राप्त हो सकती है यह एक अमूल्य रत्न है।

सब नियमों का सारभूत हैं ब्रह्मचारी को देव गण भी नमस्कार करते हैं जगत् में यह महाव्रत पूजनीय माना जाता है।

अतएव! मन वाणी और काय से इस को धारण करना चाहिये क्योंकि—चारित्र धर्म का यह महाव्रत प्राण भूत है निरोगता देने वाला है चित्त की स्थिरता का मुख्य कारण है इस के धारण करने से हर एक गुण धारण किये जा सकते हैं।

इस लिये! मुनियों के लिये यह चतुर्थ महाव्रत धारण करना आवश्यकीय बतलाया गया है सो मुनि जन—आप तो मैथुन सेवन करें नहीं औरों को इस क्रिया का उपदेश न करें।

जो मैथुन क्रिया करने वाले जीव हैं उन के मैथुन की अनुमोदना न करे मनुष्य—देव—पशु—इन तीनों के

मैथुन की मन में भी आशा न करे तब ही यह महाव्रत शुद्ध पल सकता है।

अपरिग्रह महाव्रत ।

साथ ही ब्रह्मचारी अपरिग्रह महाव्रत का भी पालन करे क्योंकि—धन धान्य का मूर्च्छा से रहित होना यही अपरिग्रह महाव्रत है ग्राम धान नगर आदि में जो वस्तु पड़ी हो उस का ममत्व भाव न करना यही, अपरिग्रह महाव्रत होता है साधु मन मन वचन और काय से धन का सेवन न करे अतएव ! आप धन पास रक्खे नहीं औरों को रखने का उपदेश सुने नहीं जो धन में ही मूर्छित रहते हैं उन की अनुमोदना भी न करे इस महाव्रत के धारण करने से अकिंचन वृत्ति वाला हो जाता है। जिस से वह निर्भय हो कर विचरता है अपरिग्रह वाले मनुष्य का जीवन उच्च कोटि का बन जाता है वह सदैव परोपकार करने में समर्थ और समाधियुक्त होता है वास्तव में संसार पथ में क्लेष उत्पन्न होने के कारण हैं धन में मुख्य कारण परिग्रह का संचय है वा ममत्व भाव है सो मुनि अपरिग्रह वाला हो कर अपने आत्मा की शोभना करे।

रात्रि भोजन परित्याग।

फिर जीव रक्षा के लिये वा संतोष वृत्ति के लिये रात्रि भोजन कदापि न करे रात्रि भोजन विचार शीलों के लिये अयोग्य बतलाया गया है रात्रि भोजन करने में अहिंसा व्रत पूर्ण प्रकार से नहीं पल सकता अतः दया वास्ते निश भोजन त्यागना चाहिये तथा मुनि अन्न की जाति, पानी की जाति, पिठाई आदि की जाति, चूर्ण आदि जाति, इन चारों अहारों में से कोई भी आहार न करे।

इतना ही नहीं किन्तु सूर्य की एक कला दब जाने से भी रात्रि भोजन के त्याग में दोष लग जाता है यदि रात्रि भोजन परित्याग वाले जीव को रात्रि में मुख में पानी भी आजावे फिर वह उस पानी को बाहिर न निकाले फिर भी उसको दोष लग जाता है इस लिये रात्रि भोजन में विवेक भली प्रकार से रखना चाहिये।

भिक्षु रात्रि भोजन आप न करें, औरों से न कराये, जो रात्रि में भोजन करते हैं उन की अनुमोदना

भी न करे पर व्रत भी मन वचन और काय से शुद्ध पालन करे क्योंकि- यह सब साधन आत्मा की शुद्धि के लिये ही हैं।

ईर्या समिति।

फिर यत्ना के साथ गमन क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये क्योंकि—यत्न क्रिया ही संयम के साधन कारी है दिन का बिना देखे नहीं चलना रात्रि को रजो हरण के बिना भूमि प्रमार्जन किए नहीं चलना क्योंकि—धर्म का मूल यत्न ही है इस लिये अपने शरीर प्रमाण आगे भूमि को देख कर पैर रखना चाहिये। और चलते हुए बातें न करनी चाहिये। गान ध्यान करना न चाहिये। स्वाध्याय भी न करना चाहिये। ऐसे करने से यत्न पूर्ण प्रकार से नहीं रह सकता यद्यपि गमन क्रिया का निषेध नहीं किया गया किन्तु अयत्न का निषेध अवश्य किया हुआ है।

भाषा समिति।

जब गमन क्रिया में अयत्न का निषेध किया गया है तो बोलने का भी यत्न अवश्य होना चाहिये। मुनि

भाषा समिति के पालन करने वाला बिना विचार किये कभी भी न बोले तथा जिस शब्द के बोलने में पाप लगता होवे और दूसरा दुःख मानता होवे इस प्रकार की भाषा मुनि न बोले यद्यपि भाषा सत्य भी है किन्तु उस के बोलने से यदि दूसरा दुःख मानता होवे तो वह भाषा मुख से न निकालनी चाहिये जैसे काणे को काणा कहना इत्यादि भाषाएं न बालनी चाहिये।

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, हास्य, भय, मोह, इन के वश होकर वाणी न बोलनी चाहिये कारण कि जब आत्मा पूर्वोक्त कारणों के वश होकर बोलता है तब उस का सत्य व्रत पलना कठिन हो जाता है। इस लिये सत्यव्रत की रक्षा के लिये भाषा समिति का पालन अवश्य ही करना चाहिये। जिस आत्मा के भाषा बोलने का विवेक होता है वह क्लेशों का नाश कर देता है, जब बोलने का विवेक हो गया तो फिर—

एषणा समिति।

भोजन का विवेक भी अवश्य होना चाहिए। जैसे कि— मुनि निर्दोष भिक्षा द्वारा जीवन व्यतीत करे शास्त्रों में

भिक्षा विधि बड़े विस्तार से प्रति पादन की गई है उसी के अनुसार भिक्षा लावे किन्तु तात्पर्य यह है कि–जिस प्रकार किसी जीव को दुःख न पहुंचे उसी प्रकार भिक्षा लावे शास्त्रों में लिखा है जैसे भमरें फूलों में रस लेने का जाते हैं किन्तु रस से अपने आत्मा की तृप्ति तो कर लेते हैं फूलों को पीड़ित नहीं करते उसी प्रकार भिक्षु एस वृत्ति से आहार लाव जिस प्रकार किसी आत्मा को दुःख न पहुंचे इतना ही नहीं किन्तु फिर भी अल्प आहार करे ।

इस आहार भी परिमाण से अधिक खाया हुआ हानि कारक हो जाता है जैसे सुक्के इन्धन से आग और भी प्रचंड रूप धारण कर लेती है तद्वत् इसी प्रकार भी भिक्षु के लिए सुख कारक नहीं होता तथा जैसे फोड़े स्फोटक पर औषधि का प्रयोग किया जाता है केवल रोग शमन के लिए ही होता है शरीर की सुन्दरता के लिए नहीं है उसी प्रकार भिक्षु प्राणों की रक्षा के लिए वा संयम निर्वाह के लिए ही आहार करे अपितु बल आदि की वृद्धि के लिए न करे यत्न पूर्वक आहार करता हुआ फिर जिस वस्तु को उठावे वा रक्खे उस में भी यत्न होना चाहिए

आदान निक्षेपण समिति

जैसे कि जो वस्त्र पात्र उपकरण आदि उठाना पड़े वा रखना पड़े उसमें यत्न अवश्य होना चाहिए।

यत्न से दो लाभ की प्राप्ति होती है एक तो जीव रक्षा द्वितीय वस्तु वा स्थान सुथरा रहता है।

आलस्य के द्वारा उक्त दोनों कार्य ठीक नहीं हो सकते इस वास्ते इस समिति में ध्यान विशेष रखना चाहिए।

यद्यपि चलनादि क्रियाओं में यत्न पहिले भी कथन किया गया है किन्तु इस समिति में वस्तु का उठाना वा रखना इत्यादि कार्यों में यत्न प्रति पादन किया गया है जब इस प्रकार यत्न किया गया तो फिर—

परिष्ठापना समिति।

जो वस्तु गेरने में आती हैं जैसे मल मूत्र थूक—श्लेष्म आदि वा पानी आदि जो जो पदार्थ गेरने योग्य हों तो उस समय भी यत्न अवश्य ही होना चाहिये क्योंकि—

है। जैसे कि—जिस का मन वश में नहीं है उस को चित्त की एकाग्रता कभी भी नहीं हो सक्ती, चित्त की एकाग्रता बिना शान्ति की प्राप्ति नहीं होती जब चित्त को शान्ति ही नहीं है तब क्रिया कलाप केवल कष्टदायक ही हो जाता है अतएव ! सिद्ध हुआ एकाग्रता के कारण से ही शान्ति की प्राप्ति मानी गई है।

कल्पना कीजिये ! एक बड़ा पुरुष है उसको लौकिक पक्ष में हर एक प्रकार की सामग्री की प्राप्ति हुई २ है जैसे धन, परिवार, प्रतिष्ठा, व्यापार, लौकिक सुख, किंतु मन उस का किसी मानसिक व्यथा से पीडित रहता है जब उससे पूछो तब वह यही उत्तर प्रदान करेगा कि—मेरे समान कोई भी दुःखी नहीं है, अब देखना इस बात का है—यदि धन, परिवारादि के मिलने से ही शान्ति होती तो वह पदार्थ उस को प्राप्त हो रहे थे। तो फिर उसे क्यों दुःख मानना पड़ा, इस का उत्तर यह है कि—चित्त की शान्ति प्रवृत्ति में नहीं है, निवृत्ति में ही चित्त की शान्ति हो सकती है इस लिये जब चित्त की शान्ति होगी तब ही संयम का जीव आराधक हो सकता है, यद्यपि संयम

शब्द को हर एक प्रकार से व्याख्या की गई है परन्तु सम उपसर्ग—और "यम्" धातु "अप्" प्रत्यय से ही संयम शब्द बनता है सो जिस का अर्थ यही है। ज्ञान पूर्वक निवृत्ति का होना जब सम्यग् ज्ञान से तृष्णा का निरोध किया जायेगा तब ही आत्मा अपने संयम का आराधक बन सकता है तथा मनोगुप्ति द्वारा हर एक प्रकार की शक्तियें भी उत्पन्न कर सकता है। मेस्मेरेजम विद्या एक मन की शक्ति का ही फल है सो जब मनोगुप्ति होगी तब वचन गुप्ति का होना स्वाभाविक भाव है।

वचन गुप्ति।

वचन वश करने से सब प्रकार के क्लेष मिट जाते हैं प्रायः क्लेषों की उत्पत्ति वचन के ही कारण से हो जाती है क्योंकि—जब विना विचार किए वचन बोला जाता है वह वचन दूसरे के अनुकूल न होने से क्लेष जन्य बन जाता है शास्त्रों में लिखा गया है कि—शस्त्रों के प्रहार लगे हुए विस्मृत हो जाते हैं किन्तु वचन रूपी शस्त्र का प्रहार लगा हुआ विस्मृत होना कठिन होता है शास्त्रों के जाते समय उनके टालने के लिए अनेक प्रकार

के उपाय किये जा सकते हैं उन उपायों से कदाचित् शस्त्र के प्रहारों से बचाव हो भी सकता है, किन्तु वचन रूपी शस्त्र बिना रोक टोक से कानों में प्रविष्ट हो जाता है, फिर श्रवण में गया हुआ वह प्रहार मन पर विजय पाता है जिस के कारण से मन औदासीन दशा को प्राप्त हो जाता है। अतएव! सिद्ध हुआ कि वचन के समान कोई भी और शस्त्र नहीं है। इस लिये वचन गुप्ति का धारण करना आवश्यकीय है जब वचन गुप्ति ठीक की जायेगी तब वचन के विकार से जीव रहित होता हुआ अध्यात्म वृत्ति में प्रविष्ट हो जाता है। अर्थात् आध्यात्मिक दशा में चला जाता है जिस के कारण से वह अपने आप को वा अनेक शक्तियों को देखने लगता है। यदि उस के मुख से अकस्मात् वचन भी निकल जावे तो वह वचन उसका मिथ्या नहीं होता" वर और शाप की शक्ति उस को हो जाती है इस लिये वचन गुप्ति का होना बहुत ही आवश्यकीय है" तथा जो बहु भाषी होते हैं उनकी सत्यता पर लोगों का विश्वास स्वल्प हो जाता है। साथ ही वह अनेक प्रकार के कष्टों के मुंह को देखता है सो जब वचन गुप्ति होगई तब काय गुप्ति का होना भी सुगम बात है।

काय गुप्ति

कायगुप्ति के बिना धारण किए लौकिक पक्ष में भी जीव यश प्राप्त नहीं करसक्ते देखिये ! जिनके काय वशमें नहीं है वेही चोरी और व्यभिचार में प्रवृत्त होते हैं जिनका फल प्रत्यक्ष लोगों के दृष्टिगोचर होरहा है यदि उनके काय वश में होता तो फिर क्यों वेह नाना प्रकार के कष्ट पाबते । मित्रो ! काय के बिना वश किए ध्यान और ज्ञान दोनों ही नहीं प्राप्त होसक्ते । क्योंकि-बिना दृढ़ आसन धारे उक्त दोनों ही कार्य सिद्ध नहीं होसक्ते ।

यद्यपि—मन के भावों से आत्मा नाना प्रकार के कर्मों को बांधते हैं परन्तु लौकिक-पक्ष में काय का पाप बलवान् बतलाया गया है क्योंकि-यश और अपयश काय के द्वारा ही जीव प्राप्त करते हैं अतएव ! काय का वश करना परमावश्यकीय है । सो जब काय वश में होगया तब पूर्णतया संवर भावों की प्राप्ति होता है फिर पूर्ण संवर का फल यह होजाता है कि—यह आत्मा पुण्य और पापरूपि आस्रव से रहित होता है ।

जो आत्मा आश्रव से छूटगया और उसके पुण्य पाप क्षय होगए तो वही समय उस आत्मा के मोक्ष का माना जाता है यदि किंचित् मात्र पुण्य पाप की प्रकृतियें रहगई हों तब वेह जीवन मुक्त की दशा को प्राप्त हो जाता है अतएव ! सिद्ध हुआ काम का वश करना आवश्यकीय है।

यद्यपि साधु वृत्ति के सहस्रों गुण दर्शाने किए हुए हैं किन्तु मुख्य गुण यही हैं जो पूर्व कहे जा चुके हैं इन्हीं गुणों में अन्य गुण भी आ जाते हैं इसलिए साधु वृत्ति के द्वारा जीवन व्यतीत करना पवित्र आत्माओं का मुख्य कर्तव्य है और शान्ति की प्राप्ति इसी जीवन के हाथ में है और किसी स्थान पर शान्ति नहीं मिल सकती—क्यों कि—क्षमा, दमित इन्द्रिय—और निरारंभ रूप यही पूर्वोक्त वृत्ति कथन की गई है॥

सातवाँ पाठ

(नियम करने के आगे विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! इस असार संसार में केवल धर्म ही एक सार पदार्थ है जिसके करने से प्राणी—हर एक

प्रकार के सुख पा सकता है जैसे एक बड़ा विशाल प्रफुल्लित हुआ बाग़ देखने में आता है और उसको देख कर प्रत्येक आत्मा का चित्त आनंदित हो जाता है जब उस बाग की लक्ष्मी पर विचार किया जाता है तब यह निश्चय हुए विना नहीं रहता कि—इस बाग का जल अच्छा सिंचन हुआ है उसी के कारण से इसकी लक्ष्मी अतीव बढ़ गई है। इसी हेतु से माना जाता है कि—जिस आत्मा के मन के मनोरथ पूरे हो जाते हैं और वह सर्व स्थानों पर प्रतिष्ठा भी पाता है उसका मूल कारण एक धर्म ही है। जैसे भावों से उसने धर्म किया था वैसे ही फल उस आत्मा को लग गये। इस लिए। धर्म का करना अत्यावश्यकीय है।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि—कौनसा धर्म ग्रहण किया जाए। तब इसका उत्तर यह है कि—शास्त्रों मे तीन अंग धर्म के कथन किए हैं जैसे कि तप, क्षमा, और दया, सो तप इच्छा निरोध का नाम है वा कष्टों का सहन करन को भी तप ही कहते हैं जब कष्टों का समय आ जाए तब उन कष्टों को शान्ति पूर्वक

सहन करना यही क्षमा धर्म है तथा जिन आत्माओं ने कष्ट दिया है उन्हों पर मन से भी द्वेष न करना यह " दया " धर्म है परन्तु क्षमा और दया का भी मूल कारण तप ही है अतएव ! सिद्ध हुआ तप कर्म अवश्य ही करना चाहिए ।

संसार भर में हर एक पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है जैसे कि—धन, परिवार, लाभ, मन इच्छित सुख परन्तु तप करने का समय प्राप्त होना अति कठिन है क्यों कि—तप कर्म उस दशा में हो सकता है जब शरीर पूर्ण निरोग दशा में हो और पांचों इन्द्रियें अपना २ काम ठीक करती हों फिर तप कर्म करते हुए इस विचार की भी आवश्यकता होती है कि—जिस प्रकार तप (प्रत्याख्यान) ग्रहण किया गया हो उसको उसी प्रकार से पालन किया जाए । इस विषय में प्रत्याख्यान करते समय ४९ भांगे कथन किए गए हैं—भांगे शब्द का यह अर्थ है कि एक प्रकार से प्रत्याख्यान किया हुआ है दूसरे प्रकार से प्रत्याख्यान नहीं है ! जैसे कल्पना करो किसी ने प्रत्याख्यान किया कि—आज मैं मन से कंदमूल नहीं खाऊंगा

तब पर अपने हाथों से वनस्पति का स्पर्श करता है और वचन से औरों को उपदेश देता है कि—तुम अमुक फल खा लो परन्तु स्वयं उसका मन खाने का नहीं है इसी प्रकार यदि वचन से प्रत्याख्यान किया हुआ है तब उसका मन और काय से प्रत्याख्यान नहीं है तथा आप अमुक कार्य नहीं करूंगा तब उसके औरों से कार्य कराने वा औरों के किए हुए कार्यों की अनुमोदना करना इन पापों का त्याग नहीं है इस से सिद्ध हुआ कि—जिस प्रकार से प्रत्याख्यान कर लिया है फिर उसका उसी प्रकार पालन करना चाहिए।

यदि करते समय स्वयं ज्ञान नहीं है तो गुरु को उचित है कि—प्रत्याख्यान करने वाले को प्रत्याख्यान के भेदों का समझा देवे जब इस प्रकार से कार्य किया जाएगा तब कर्म में दोष नहीं लगेगा बस इसी क्रम का भांगे कहते हैं।

भांगों का ज्ञान हर एक व्यक्ति को होना चाहिए जिस से वह सुख पूर्वक तप ग्रहण करने में समर्थ हो जाए।

और यह भांगे अंक और करण तथा योगों के आधार पर कथन किए गए हैं जिसमें करण तीन होते हैं जैसे कि—करना, कराना, अनु मोदना इन्हीं को करण कहते हैं मन, वचन, और काय को योग कहते हैं।

सुगम बोध के लिए एक इन के विषय का यंत्र दिया जाता है। यथा—

अंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भांगा	९	९	३	९	९	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३

भांगा—९ वां १८ वां २१ वां ३० वां ३९ वां ४२ वां ४४ वां ४८ वां ४९ वां यही इन भांगे को जानने का यन्त्र है अब इनके उच्चारण करने की शली लिखी जाती है जैसे कि—

अंक ११ का १ करण १ योग से कहना चाहिये—यथा—करूं नहीं मनसा १ करूं नहीं वयसा (वचसा)

१ करूं नहीं कायसा (कायेन) ३। कराऊं नहीं मनसा ४ कराऊं नहीं वयसा (वचसा) ५ कराऊं नहीं कायसा (कायेन) ६ अनुमोदं नहीं मनसा ७ अनुमोदं नहीं वयसा (वचसा) ८ अनुमोदं नहीं कायसा (कायेन) ९॥ इस प्रकार एकादश अंक के नव भांगे बनते हैं किन्तु इनको इसी प्रकार कण्ठ करने की शैली चली आती है इस लिए (वयसा) "कायसा" यह दोनों शुद्ध प्राकृत भाषा के वर्णों के रूपों ही रक्खे गये हैं किन्तु पाठकों को चाहिये कि पाठकों को इनके अर्थ समझा दें कि—"वयसा" वचन से "कायसा" काय से प्रत्याख्यान आदि करता हूं आगे भी सर्व भांगों के विषय इसी प्रकार जानना चाहिये।

२ अंक १२ का—भांगे नव एक करण दो योग से करने चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं मनसा वयसा करूं नहीं मनसा कायसा करूं नहीं वयसा कायसा कराऊं नहीं मनसा वयसा कराऊं नहीं मनसा कायसा कराऊं नहीं वयसा कायसा ६ अनुमोदं नहीं मनसा वायसा ८ अनुमोदं नहीं मनसा कायसा ९ अनुमोदं नहीं वयसा कायसा।

३—अंक एक १३—का भांगे ३ एक १ करण ३ योग से करने चाहिए—जैसे कि—करूं नहीं मनसा

वयसा कायसा १ कराऊं नहीं मनसा वयसा कायसा २ अनुमोदं नहीं मनसा वयसा कायसा ३ ॥

४—अंक-एक-२१ का भांगे ६ । दो करण एक योग से कहने चाहिए—जैसे कि—करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं वयसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा ३ करू नहीं अनुमोदं नहीं मनसा ४ करूं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा ५ करूं नहीं अनुमोदं नहीं कायसा ६ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा ७ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा ८ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं कायसा ९ ॥

५—अंक एक २२ का भांगे ६। दो करण दो योग से कहने चाहिए। करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वयसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा कायसा २ करूं नहीं कराऊ नहीं वयसा कायसा ३ करू नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा ४ करू नहीं अनुमोदं नहीं मनसा कायसा ५ करू नहीं अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ६ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा वयसा ७ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं मनसा कायसा ८ कराऊं नहीं अनुमोदं नहीं वयसा कायसा ९ ॥

६—भंग एक २३ दो करण ३ योग से कहने चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वयसा कायसा १ करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा २ कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा ३॥

७—भंग एक ३१ का भांगे ३। तीन करण एक योग से कहने चाहिये। करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वयसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा ३॥

८—भंग एक ३२ का भांगे ३। तीन करण दो योग से कहना चाहिये। करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा १ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा २ करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वयसा कायसा ३।

९—भंग ३३ का भांगा १। तीन करण तीन योग से कहना चाहिये। जैसे कि—करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा कायसा १॥

इस प्रकार ४६ भांगों का विवरन किया गया है। हर एक नियम करने वाले को इनका ध्यान रखना चाहिये। जैसे कि—सब भांगों के अनुसार नियम किया जायगा। उस नियम का पलना बहुत ही सुगम होगा और उसके पालने का ज्ञान भी ठीक रहेगा जब प्रत्याख्यान की विधि को जानता ही नहीं तब उसके शुद्ध पालने की क्या आशा की जासकती है अतएव! इनको कण्ठस्थ अवश्य ही करना चाहिये।

इनका पूर्ण विवरण देखना होवे सो मेरे लिखे हुए पच्चीस बोल के थोकड़े के २४ वें बोल में देखना चाहिये।

तथा श्री भगवती सूत्र में इनका विस्तार पूर्वक कथन किया गया है जब कोई आत्मा प्रत्याख्यान करता है तब उसको देश वा सर्व चारित्री कहा जाता है सो चारित्र ५ प्रकार से प्रतिपादन किये गए हैं जैसे कि— सामायिक चारित्र १ छेदोपस्थापनीय चारित्र २ परिहार-विशुद्धि चारित्र ३ सूक्ष्म संपराय चारित्र ४ यथाख्यात चारित्र ५ सामायिक चारित्र सावद्य कर्म की निवृत्ति रूप होता है १ पूर्व दीक्षा का छेद रूप छेदोपस्थापनीय चारित्र

होता है २ दोषों के दूर करने के वास्ते परिहार विशुद्धि (तप) चारित्र कहा गया है ३ सूक्ष्म कषायरूप सूक्ष्म संपराय चारित्र कथन किया गया है ४ जिस प्रकार कहता है उसी प्रकार करता है उसे ही यथाख्यात चारित्र कहते हैं ५ इन चारित्रों का पूर्ण वृत्तान्त जिनाह मिज्ञप्ति आदि सूत्रों से जान लेना चाहिये।

वास्तव में चारित्र का अर्थ आचरण करना ही है जब तक आत्म शुभाचरण नहीं करता तब तक शुमार्ग में नहीं आसकता सदाचार शब्द भी इसी पर्याय का वाची है।

किन्तु चारित्र दो प्रकार से प्रतिपादन किया गया है जैसे कि—द्रव्य चारित्र और भाव चारित्र—द्रव्य चारित्र से पुण्य का बंध पौद्गलिक सुख उपलब्ध होजाते हैं भाव चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होजाती है अपितु पांचों चारित्रों का आदि मूल सामायिक चारित्र ही है क्योंकि सर्व-सावद्य (पाप मय) योगों का ही त्याग किया गया है, तब उत्तरोत्तर गुणों की प्राप्तिरूप अन्य चारित्रों का वर्णन किया जाता है इस लिए १–सामायिक चारित्र में

पुरुषार्थ अवश्य ही करना चाहिये और इस चारित्र के दो भेद किए गये हैं जैसे देश चारित्र वा सर्व चारित्र सो देश चारित्र गृहस्थ सुख पूर्वक ग्रहण कर सकते हैं सर्व चारित्र मुनि जन धारण करते हैं सो गृहस्थों को देश चारित्र में विशेष परिश्रम करना चाहिये जिस से वह सुगति के अधिकारी बनें।

पाठ आठवां।

(संयतराजर्षि का परिचय)

पूर्व समय में काम्पिलपुर नामक एक नगर था जो नागरिक गुणों से मण्डित था, सुन्दरता में इतना प्रसिद्ध था, कि—दूरदेशान्तरों से दर्शक जन देखने की तीव्र इच्छा से वहां पर आते थे, और नगर की मनोहरता को देखकर अपने २ आगमन के परिश्रम को सफल मानते थे, उस नगर के बाहिर एक उद्यान था, जिसका नाम "केशरी वन" ऐसा प्रसिद्ध था, नाना प्रकार के सुन्दर वृक्षों का आलय था, विविध प्रकार लतायें जिसकी प्रभा को उत्तेजित कररही थीं, जिनमें

पट्पदगणों के पुष्प विद्यमान रहते थे, अनेक प्रकार के पक्षीगण अपने २ मनोरंजक राग अलाप रहे थे, मृगों की पंक्तियें भोली-भाली सुन्दराकृति को लिए इतस्ततः धावन करती थीं, जिनके मिष लोचन चलते हुए पथिकों के हृदयों को अयस्कान्त के समान आकर्षण करलेते थे कहांतक, उस वन की उपमा किजें ! यावत् जो पुरुष उसका एकवार देखलेता था, वह अपने जन्म को उसदिन से ही सफल समझता था।

सो पूर्वोक्त नगर में अति प्रभावशाली, पुण्य पुंज, परम विख्यात "संयत" नामक राजा राज्य अनुशासन करता था जिसको पूर्व भाग्योदय से धन, धान्य, सेना, वाहन, अश्व, गजादि राज्य के योग्य सर्व सामग्री पूर्णतया प्राप्त थी, एकदा वह राजा चतुर् प्रकार की सेना को साथ लेकर आखेटक निमित्त अर्थात् शिकार खेलने के लिए केशरी वन में गया, वहां एक परम सुन्दर श्याम वर्णीय मृग दृष्टिगोचर हुआ, और देखकर राजा से गुप्त होने की चेष्टा करके भागगया, किन्तु भागता हुआ अपनी मनोहरता की आकर्षण शक्ति का बाण राजा के हृदय में प्रविष्ट करगया, फिर क्या था !

राजाजी के मुख में शीघ्र पानी भर आया, और चाहा कि–इस मृग का वध करूं, रसों के लोलुपी राजा ने सेना को वहां ही खड़े रहने की आज्ञा दी, केवल दो दासों को ही साथ लेकर उसके पीछे अपने पवन जीत अश्व को दौड़ाना प्रारंभ किया, और बड़े बल से एक ऐसा धनुष मारा, जो मृग के हृदय को विदीर्ण करता हुआ उसकी दूसरी ओर जा निकला तब मृग, घाव से दुःखित होकर मृत्यु के भय मे भाग कर एक अफोव (लताओ के) मंडप में जा गिरा, राजा-अपने नशाने पर विश्वास करके अर्थात् मेरे धनुष प्रहार से मृग अवश्यमेव ही घायल होगया होगा, अतः वह कदापि जीवित नहीं रहसकेगा, ऐसा विचार करके उसके पीछे २ भागता हुआ वहां पर ही आगया, और उस घावयुक्त हरिण को देख अपने परिश्रम की सफलता का विचारही कररहा था, कि, अकस्मात् उसकी दृष्टि एक जैन साधु पर पड़ी, जोकि–धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्या रहे थे, स्वाध्याय में प्रवृत्त थे, तथा वह तपोधन क्षमा (शान्ति) निरहङ्कारता, निर्लोभता तथा पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह,) करके विभूषित थे

और उस अफोर्ष मंडप में अर्थात् नागवल्ली प्रासो, तथा वृक्षादि करके आकीर्ण स्थान में इकेले ही ध्यान कररहे थे, तदनन्तर, राजा मुनि को देखकर भयभीत होगया, और विचार करने लगा कि—मुझमंदभागी ने मांस के स्वाद के वास्ते इस मुनि के मृग को मारदिया, सो यह महद् अकार्य हुआ, यदि यह मुनि, क्रोधित होगए तो फिर मेरे दुःख की सीमा न रहेगी, ऐसा सोच कर अश्व को विसर्जन करके (त्याग करके) मुनि महाराज के समीप आया, और सविनय वन्दना नमस्कार (प्रणाम) की, मुख से ऐसे बोला कि—हे भगवन्! मेरे अपराध को क्षमा करो, मुनि मौन वृत्ति में ध्यान कररहे थे, इस कारण उन्होंने राजा को कुछ भी उत्तर न दिया, तथा अपने ध्यान में बैठे रहे, मुनि के न बोलने से राजा भयभीत होगया, तथा भयभ्रान्त होकर इस प्रकार भाषण करने लगा कि—हे भगवन्! मैं कांम्पिल्यपुर का संयत नामक राजा हूं, इसलिए! आप मेरे से वार्तालाप करें, हे स्वामिन्! आप जैसा साधु क्रुद्ध होने पर अपने तप के बल से सहस्रों, लक्षों, करोड़ों, पुरुषों का दाह करने में समर्थ हैं, अतः आपको क्रुद्ध न होना चाहिए।

राजा के इस प्रकार वचनों को श्रवण करके मुनि ने विचार किया कि—मेरा यह धर्म है कि—किसी प्राणी को भी भय न उपजाऊं तथा जो मेरे से भय करें, उनका भय दूर करूं, इसी प्रकार शास्त्रों का उल्लेख है, (निर्भय करना परम धर्म है) ऐसा विचार कर मुनि बोले,—हे राजन्! भय मतकर! मैं तुझे अभय दान देता हूं, तूभी जीवों को अभय दान प्रदान कर, किसी प्राणी को दुःखित करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है।

हे पार्थिव! इस क्षणभंगुर, अनित्य, संसार में स्वल्प जीवन के वास्ते क्यों प्राणी वध करता है।

हे नृप! एकदिन सर्वराष्ट्र अन्तःपुरादिक, भाण्डागारादिक त्यागने पड़ेंगे, और परवश होकर परलोक को जाना पड़ेगा, फिर ऐसे अनित्य संसार को देखकर भी क्यों राज्य में मूर्च्छित होकर जीवों को पीड़ित करने से स्वआत्मा को पापों से बोझल कररहा है।

हे महीपते! जिस जीवित तथा रूप में तू इतना मुग्ध हो रहा है, और परलोक के भय से निर्भय होरहा है, वह आयु तथा शरीर की सौन्दर्य विद्युत् के समान

चंचल है, यौवन नदी के वेग की उपमा वाला है "जीवन तृणाग्नि के समान स्वल्पकाल का है" भोग शरत्काल के मेघों की छाया सदृश हैं, मित्र, पुत्र, कलत्र, भृत्यवर्ग, सम्बन्धी जनादि सर्व स्वप्न तुल्य हैं।

हे भूपते ! दारा, पुत्र, बान्धव, भ्रातादि प्रमुख सब अपने २ स्वार्थ के साथी हैं "और जीवित रहने तक ही जीत हैं" मृत्यु के समय कोई भी साथ नहीं जाता, उस पुरुष के पीछे उसी के धन से अपने सम्बन्धियों का पालन पोषण करते हैं, आनन्द से शेष आयु को व्यतीत करते हैं, और उस मृतक पुरुष का स्मरण भी नहीं करते,—इसलिए।

हे राजन् ! कलत्र दारा, राज्यादि में व्यर्थ मुग्धता न करनी चाहिए इसलिये संसार की कैसी सोचनीय दशा है कि—अत्यन्त शोकातुर पुत्र अपने मृतक पिता को घर से बाहर करते हैं, उसी प्रकार पिता भी महा दुःखी होता हुआ मृतक पुत्र को श्मशान भूमिका में लेजाकर लकड़ से उसका दाह करता है, बान्धव, बन्धु का, मृत्यु संस्कार करता है।

हे राजन् ! ऐसे विचार कर तप को ग्रहण, धर्म का आचरण, करना आवश्यक है।

हे पृथिवीपते ! जिस जीवने जैसे शुभ अथवा अशुभ कर्म तथा सुख दुःख उपार्जित न किए होते हैं, उन्हीं के प्रभाव से पर लोक को चला जाता है, और वेह कर्म ही उसके साथ जाते हैं, अन्य कोई भी जीव का साथी नहीं बनता।

हे महीपते ! इस प्रकार की व्यवस्था को देख कर भी क्यों वैराग्य को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् इन सांसारिक विनाशी, क्षणिक, अध्रुव सुखों के ममत्व भाव को त्याग कर कैवल्य रूपी नित्य ध्रुव सुखों की प्राप्ति का प्रयत्न कर।

इस प्रकार मुनि के परम वैराग्य उत्पादक, स्वल्पाक्षर, बहुत अर्थ सूचक, शराव (प्याले) में सागर को भरने की कहावत को चरितार्थ करने वाला, सत्योपदेश श्रवण करके, वह संयत राजा अत्यन्त संवेग को प्राप्त हुए, और गर्द भालि नामक अनगार के समीप वीतराग धर्म में दीक्षा के लिए उपस्थित होगए, राज्य को त्याग

लिया, तथा मुनि के पास दीक्षित होकर उन्हीं के शिष्य होगए। अपितु साध्वाचारादि तथा दस अंग को गुरु के पास से अध्ययन आरंभ किया।

बुद्धि की प्रगल्भता से स्वल्पकाल में ही तत्वज्ञान जैसे कठिन विषय के पारगामी होगए। एकदा गुरु की आज्ञा शिरोधारण करके आप अकेले ही विहार करगए, मार्ग में आपको एक स्थविर मुनि मिले जोकि,—महान् विद्वान् थे उनसे चिरकाल तक वार्तालाप हुआ, तथा उन्होंने आपको प्राचीन राजाओं, महाराजाओं, चक्रवर्तियों इतिहास अतीव विस्तार पूर्वक सुनाए, और संयम मार्ग में पूर्व से भी अधिक दृढ़ किया, जिनका विस्तीर्ण विवरण जैन सूत्र श्रीमदुत्तराध्ययन के अष्टादशवें अध्याय में पूर्णतया दिखलाया है जिस महाशय को अधिक स्वाध्याय करने की अभिलाषा हो, वह पूर्वोक्त सूत्र के उक्त अध्याय को स्वाध्याय करें, यहां केवल परिचय मात्र ही लिखा गया है। तथा यही इस चित्र का परिचय है।

नोट—संयत राजर्षि के चरित्र परिचय नामक लेख स्वर्गीय जैनमुनि पं० ज्ञानचन्द्र जी महाराज का लिखा हुआ था जो कि उनकी संचिका में ज्यूं का त्यूं पड़ा था और यह चित्र हस्त लिखित एक प्राचीन भंडार से उपलब्ध हुआ था।

नवाँ पाठ।

(जैन सिद्धान्त विषय)

प्रश्न	उत्तर
संसार अनादि है या आदि है।	अनादि भी है आदि भी है।
भला यह दोनों बातें कैसे होसक्ती हैं, या तो अनादी कहना चाहिये या आदि।	प्रियवर ! संसार दोनों स्वरूपों का धारण करने वाला है अतएव ! संसार अनादि भी है और आदि भी है।
अनादी किस प्रकार से है।	प्रवाह से।
प्रवाह किसे कहते हैं।	जो क्रम से कार्य चला आता हो।
इसमें कोई दृष्टान्त दो।	जैसे पिता—और पुत्र का अनादि सम्बन्ध चला आता है तथा जैसे कुक्कड़ी से अण्डा, और अण्डा से कुक्कड़ी—इसी क्रम को प्रवाह कहते हैं।

लिया, तथा मुनि के पास दीक्षित होकर उन्हीं के शिष्य होगए। अपितु सारस्वतादि तथा तत्त्व ज्ञान को गुरु के पास से अध्ययन प्रारंभ किया।

बुद्धि की प्रगल्भता से स्वल्पकाल में ही तत्त्वज्ञान जैसे कठिन विषय के पारगामी होगए। एकदा गुरु की आज्ञा शिरोधारण करके आप अकेले ही विहार करगए, मार्ग में आपको एक क्षत्रिय मुनि मिले जोकि,—महान् विद्वान थे उनसे चिरकाल तक वार्तालाप हुआ, तथा उन्होंने आपको प्राचीन राजाओं, महाराजाओं, चक्रवर्तियों के इतिहास अतीव विस्तार पूर्वक सुनाए, और संयम मार्ग में पूर्व से भी अधिक दृढ़ किया, जिनका विस्तीर्ण विवरण जैन सूत्र श्रीमदुत्तराध्ययन के अष्टादशवें अध्याय में पूर्णतया विद्यमान है जिस महाशय को अधिक वृत्तान्त देखने की अभिलाषा हो, वह पूर्वोक्त सूत्र के उक्त अध्याय की स्वाध्याय करें, यहां केवल परिचय मात्र ही लिखा गया है। तथा यही इस चित्र का परिचय है।

नोट—संयत राजर्षि के चरित्र परिचय नामक लेख स्वर्गीय जैनमुनि पं० ज्ञानचन्द्र जी महाराज का लिखा हुआ था जो कि उनकी संचिका में ज्यूं का त्यूं पड़ा था और यह चित्र हस्त लिखित एक प्राचीन भण्डार से उपलब्ध हुआ था।

प्रश्न	उत्तर
निमित्त कारण किसे कहते हैं।	जैसे—कुंभकार घट के बनाने में निमित्त मात्र होता है किन्तु मट्टी आदि द्रव्य पहिले ही विद्यमान होते हैं।
हम तो सृष्टि कर्ता परमात्मा को उपादान कारण में मानते हैं।	उपादान कारण निमित्त कारण बिना सफलता प्राप्त नहीं करसकता, जैसे कुंभकार—घट बनाने का वेत्ता तो है किन्तु मट्टी आदि द्रव्य उसके पास नहीं है तो भला! वह किस प्रकार घट बना सकता है।
परमात्मा अपनी शक्ति द्वारा सब कुछ करसकता है।	क्या—ईश्वर के इच्छा भी है।
ईश्वर इच्छा से रहित है इसलिए! उसको इच्छा नहीं होती।	जब! ईश्वर इच्छा से रहित है तो फिर बिना इच्छा शक्ति का स्फुरणा कैसे संभव होसकता है।
वह सर्वशक्तिमान् है। जो चाहे सो करसकता है।	क्या—ईश्वर अपने स्थान में दूसरे ईश्वर को बना सकता है। और अपना नाश कर सकता है।

प्रश्न	उत्तर
पहिले कुक्कड़ी क्यों न मानली जाय।	क्या–बिना अण्डा से कुक्कड़ी होसक्ती है।
यदि बिना अण्डा के कुक्कड़ी नहीं होसक्ती तो फिर पहिले अण्डा ही मानलेना चाहिए	प्रियवर ! क्या कुक्कड़ी के बिना अण्डा उत्पन्न कभी होसकता है।
जिस समय परमात्मा सृष्टि की रचना करता है उस समय अपनी शक्ति द्वारा बिना माता पिता के पुत्र उत्पन्न होजाते हैं।	प्रियवये ! कारण के बिना कार्य की उत्पत्ती कभी भी नहीं होसक्ती–जैसे मिट्टी के बिना घट नहीं बन सकता, इसी प्रकार जब परमात्मा ने मनुष्य बनाए, तब पहिले किस कारण से बनाए, और तुम कौनसा कारण मानते हो।
क्या कारण भी कई प्रकार के होते हैं।	हां–कारण दो प्रकार के होते हैं–जैसे उपादान कारण, और निमित्त कारण।
उपादान कारण का क्या अर्थ है।	अपनी शक्ति से कार्य करना।

प्रश्न	उत्तर
निमित्त कारण किसे कहते हैं ।	जैसे—कुंभकार घट के बनाने में निमित्त मात्र होता है किन्तु मिट्टी आदि द्रव्य पहिले ही विद्यमान होते हैं ।
हम तो सृष्टि कर्ता परमात्मा को उपादान कारण से मानते हैं ।	उपादान कारण निमित्त कारण बिना सफलता प्राप्त नहीं करसकता, जैसे कुंभकार—घट बनाने का वेत्ता तो है किन्तु मिट्टी आदि द्रव्य उसके पास नहीं है तो भला ! वह किस प्रकार घट बना सकता है ।
परमात्मा अपनी शक्ति द्वारा सब कुछ करसकता है ।	क्या—ईश्वर के इच्छा भी है ।
ईश्वर इच्छा से रहित है इसलिए ! उसको इच्छा नहीं होती ।	जब ! ईश्वर इच्छा से रहित है तो फिर बिना इच्छा शक्ति का स्फुरणा कैसे संभव होसकता है ।
वह सर्वशक्तिमान् है । जो चाहे सो करसकता है ।	क्या—ईश्वर अपने स्थान में दूसरे ईश्वर को बना सकता है ! और अपना नाश कर सकता है ।

प्रश्न

यह दोनों असम्भव कार्य इन्हें ईश्वर क्यों करे।

असम्भव कार्य ईश्वर नहीं करता।

माता पिता के बिना सृष्टि का उत्पन्न करदना कोई असम्भव बात नहीं है क्यों कि-बहुतसी सृष्टि बिना माता के ही उत्पन्न होती दिख पड़ती है जैसे-मेंढक सृष्टि बिना माता पिता के होजाती है।

उत्तर

दिगम्बर ! जब सर्वशक्तिमान् मानते हो फिर यह असमर्थ क्यों हास्यपद है।

यथा-बिना माता पिता के सृष्टि की रचना करना यह असम्भव काय नहीं है।

सत्य ! मेंढक सृष्टि ! वर्षा के निमित्त से उत्पन्न होती है-क्योंकि-जिस पृथिवी में मेंढक उत्पन्न होने के परमाणु होते हैं उसी में वर्षा के कारण से पूर्व वर्षों के कारण से मेंढक के जितने बीज उत्पन्न होजाते हैं-क्योंकि-यदि ऐसे न माना जायगा तब ! वर्षा के समय किसीने थाली आदि बर्तन (भाजन) रखदिए फिर मेह जल से भरगए किन्तु मेंढकों की उत्पत्ति उस जल में नहीं देखीजाती अतः

प्रश्न	उत्तर
	सिद्ध हुआ—वर्षा केवल निमित्त मात्र होती है वास्तव में उन जीवों की योनि वही है ।
जैसे वनस्पति समूर्छिम उत्पन्न होजाती है उसी प्रकार सृष्टि के विषय में भी जानना चाहिए ।	मित्रवर ! वनस्पति आदि जीवों की जैसे योनि होती है वेह उसी प्रकार उस योनि में पानी आदि निमित्तों के द्वारा उत्पन्न होजाते हैं किन्तु विना माता पिता के पुत्र उत्पन्न कभी भी नहीं होसकता ।
मनुष्यों की सृष्टि के विषय में जैन शास्त्र क्या बतलाते हैं ।	जैन सूत्रों में लिखा है कि अनादिकाल से यह नियम चला आता है—स्त्री पुरुष के परस्पर संयोग (मैथुन) से गर्भजन्य मनुष्य सृष्टि उत्पन्न होती चली आरही है और आगे को भी यही नियम चला जायगा ।

प्रश्न	उत्तर
सखे ! आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती तदनु मैथुनी सृष्टि होजाती है ।	अवश्य ! बस ! अमैथुनी सृष्टि उत्पन्न होही नहीं सकती तो भला सृष्टि हुई कहां से जो आपने तदनु सृष्टि मैथुनी होती है ऐसे मानलिया है, तो भला पहिली सृष्टि में परमात्मा ने क्या दोष देखा जिससे उसका प्रथम नियम बदलना पड़ा ।
तो फिर हमको क्या मानना चाहिए !	हमको प्रवाह से संसार अनादि मानना चाहिए ।
तो भला अनादि संसार किस प्रकार माना जासकता है ।	पर्याय से ।
पर्याय किसे कहते हैं ।	पदार्थों की दशा परिवर्तन हो जाना जैसे शुभ पदार्थ से अशुभ होजाते हैं और अशुभ पदार्थों से शुभ बन जाते हैं नूतन से पुरातन, और प्राचीन से फिर नूतन-जैसे अनादि पदार्थ प्रत्यक्ष करने

प्रश्न	उत्तर
	के पश्चात् मल मूत्र की पर्याय को प्राप्त हो जाते हैं फिर वही मल मूत्र खेत आदि स्थानों में पड़ कर फिर अन्नादि पर्याय को प्राप्त हो जाते हैं।
मनुष्यों का पर्याय किस प्रकार परिवर्तन होता है।	मनुष्यों का पर्याय समयर परिवर्तन होता रहता है, और स्थूल पर्याय—यह है जैसे—बाल, युवा, और वृद्ध।
मनुष्य आदि क्या अनादि हैं।	मनुष्य आदि भी है और अनादि भी है।
किस प्रकार अनादि और आदि है।	जीव अनादि है मनुष्य की पर्याय आदि है जैसे जब मनुष्य उत्पन्न हुआ उस समय उसकी आदि हुई और जब मृत्यु होगया तब मनुष्य की पर्याय का अंत होगया।
क्या हर एक जीव इसी प्रकार से माने जाते हैं।	हां—हर एक—जीव इसी प्रकार माने जाते हैं जैसे—देव योनि के जीव आदि भी हैं—और अनादि भी ह—आदि तो देह इस लिए हैं कि—देव

प्रश्न	उत्तर
	योनि में उत्पन्न होने के कारण से क्योंकि–जिसकी उत्पत्ति है उसकी आदि है और जब आदि सिद्ध हुई तब भेद अन्त वाले भी सिद्ध होगए। अतएव ! भेद सादि सान्त है किन्तु जीव द्रव्य की अपेक्षा से यह अनादि अनंत हैं इस प्रकार हर एक के विषय में जानना चाहिये।
अनादि अनन्त कौन २ से द्रव्य हैं।	धर्म–अधर्म, आकाश, काल जीव और पुद्गल, यह छै द्रव्य अनादि अनन्त हैं।
अनादि सान्त क्या है ,,	भव्य जीवों के कर्म अनादि सान्त हैं अर्थात् जो जीव मोक्ष जाने वाले हैं उनके साथ भी कर्मों का सम्बन्ध है वह अनादि सान्त हैं क्योंकि–कर्मों को क्षय करके मोक्ष जायेंगे।

प्रश्न	उत्तर
सादि अनन्त पदार्थ कौन सा है।	जिस समय ! जो जीव मोक्ष में जाता है उस समय उसकी आदि होती है परन्तु वह अपुनरा त्ति वाला होता है इस लिये उसे सादि अनन्त कहा जाता है।
सादि सान्त पदार्थ कौन २ से हैं।	चारों जातियों क जीवों का पर्याय सादि सान्त हैं तथा पुद्गल द्रव्य का पर्याय सादि सान्त है।
चारों जातियों के जीवों की पर्याय सादि सान्त कैसे हैं।	नारकीय १ देव २ मनुष्य ३ और तियक् ४ इन जीवों के उत्पन्न और मृत्यु धम के देखने से यही निश्चय होता है कि—इनका पर्याय सादि सान्त है और जीव की अपेक्षा अनादि अनन्त है।
पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं।	जिसके मिलने और बिछुरने का स्वभाव है यावन्मात्र पदार्थ हैं वे सर्व पुद्गल द्रव्य हैं और यह रूप है।

प्रश्न	उत्तर
प्रमाण किसे कहते हैं।	जो सर्व प्रकार प्राप्ती हो अर्थात् सर्व प्रकार से पदार्थों का वर्णन करे।
प्रमाण कितने हैं। उनके नाम बताओ।	दो। प्रत्यक्ष प्रमाण १ और परोक्ष प्रमाण २।
प्रत्यक्ष प्रमाण कितने प्रकार से वर्णन किया गया है। उनके नाम बतलाओ।	दो प्रकार से। इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण १ और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण।
इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं।	जो पांचों इन्द्रियों के प्रत्यक्ष होवे—जैसे जो शब्द सुनने में आते हैं वेह श्रुतेन्द्रिय के प्रत्यक्ष होते हैं, जो रूप के शुक्ल देखने में आते हैं, वेह चक्षुरिन्द्रिय के प्रत्यक्ष हैं इसी प्रकार पांचों इन्द्रियों के विषय में जानना चाहिये। अर्थात् जिन पदार्थों का पांचों इन्द्रियों द्वारा निर्णय किया जाता है उन्हें ही इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो इन्द्रियों के विना सहारे केवल आत्मा द्वारा ही पदार्थों का निर्णय किया जाए।
नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान कितने प्रकार से वर्णन किया गया है।	दो प्रकार से।
उनके नाम बतलाओ।	देश प्रत्यक्ष १ और सर्व प्रत्यक्ष २
देश प्रत्यक्ष किसे कहते है।	जिस आत्मा के ज्ञाना वरणीय और दर्शना वरणीय कर्म के सर्वथा आवरण दूर नहीं हुए हैं किन्तु देश मात्र आवरण दूर होगया है सो वह आत्मा जिन पदार्थों का निर्णय करता है वा अपने आत्मा द्वारा उन पदार्थों को देखता है उसे ही देश प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
देश प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं।	दो भेद।
वे कौन २ से हैं।	अवधि ज्ञान नो इन्द्रियें देश प्रत्यक्ष और मनः पर्यय ज्ञान नो इन्द्रिय देश प्रत्यक्ष।
अवधि ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो रूपि पदार्थ हैं वह उनको अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष देखता है किन्तु जो धर्मादि द्रव्य हैं उनको वह अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं देखता।
मन पर्यय ज्ञान देश प्रत्यक्ष किसे कहते हैं।	जो–मन के पर्यायों का जो ज्ञान होता है मनके पर्यायों को (भावों) जानता है।
नो इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	नो इन्द्रिय सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान केवल ज्ञान का नाम है क्योंकि– केवल ज्ञान क्षायिक भाव में होता है इसी ज्ञान वाले को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
प्रत्यक्ष ज्ञान कैसा होता है।	यह अति निर्मल और विशद होता है केवल आत्मा पर ही इसकी निर्भरता है इन्द्रियों की सहायता की यह ज्ञान इच्छा नहीं रखता इसी लिए । इस ज्ञान को अतीन्द्रिय ज्ञान भी कहते हैं ज्ञाना वरणीय १ दर्शना वरणीय २ कर्मों के क्षय से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।
परोक्ष ज्ञान किसे कहते हैं।	जो इन्द्रियादि के सहारे से प्रादुर्भूत हो और फिर आत्मा द्वारा उस का प्रमाण सहित निर्णय किया जाए।
परोक्ष ज्ञान के कितने भेद हैं	पांच—५
वे कौन २ से हैं।	स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, और आगम (शास्त्र)

प्रश्न	उत्तर
स्मृति ज्ञान किसे कहते हैं ?	पिछले संस्कार से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे स्मृति ज्ञान कहते हैं —जैसे यह वही देवदत्त है इत्यादि,
प्रत्यभि ज्ञान किसे कहते हैं।	जो-प्रत्यक्ष और स्मृति की सहायता से उत्पन्न होता है उस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं जैसे कोई पुरुष किसी के पास आया है तो उसको देखने वाले ने कहा कि— यह वही पुरुष है जिसको मैंने वहां पर देखा था वा गौ के सदृश यह नीलगाय है इत्यादि।
तर्क ज्ञान किसे कहते हैं।	जो अन्वय-और व्यतिरेक की सहायता से उत्पन्न होता है उसको "तर्क" ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
अन्वय किसे कहते हैं।	जिसके होने से दूसरे पदार्थ की सिद्धि पाई जावे जैसे आग होने से धूआँ होता है उसे अन्वय कहते हैं।
व्यतिरेक किसे कहते हैं।	जिसके न होने से दूसरे पदार्थ की भी असिद्धि हो-जावे—जैसे आग के न होने से धूम भी नहीं होता।
अन्वय का दूसरा नाम क्या है	उपलब्धि।
व्यतिरेक का दूसरा नाम क्या है।	अनुपलब्धि।
अनुमान किसे कहते हैं।	साधन के द्वारा जो साध्य का ज्ञान होता है उसे ही अनुमान कहते हैं।
हेतु किसे कहते हैं।	जो साध्य के साथ अविनाभावपन से निश्चित हो, अर्थात् साध्य के बिना होही न सके उसेही हेतु कहते हैं।
अविना भाव किसे कहते हैं।	जो सह भाव नियम को और क्रम भाव के नियम को धारण किये हुए हो।

प्रश्न—	उत्तर—
स्मृति ज्ञान किसे कहते हैं।	पहिले संस्कार से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे स्मृति ज्ञान कहते हैं —जैसे यह वही देवदत्त है इत्यादि,
प्रत्यभि ज्ञान किसे कहते हैं।	जो–प्रत्यक्ष और स्मृति की सहायता से उत्पन्न होता है उस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं जैसे कोई पुरुष किसी के पास खड़ा है वा उसको देखने वाले ने कहा कि— यह वही पुरुष है जिसको मैंने वहां पर देखा था या गौ के सदृश यह नीलगाय है इत्यादि।
तर्क ज्ञान किसे कहते हैं।	जो अन्वय–और व्यतिरेक की सहायता से उत्पन्न होता है उसही "तर्क" ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
साध्य किसे कहते हैं।	जो पक्षवादी का माना हुआ हो और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से असिद्धि न किया गया हो। वही साध्य कहा जाता है। अर्थात् जो सिद्ध करना है वही साध्य होता है।
आगम किसे कहते हैं।	जो शास्त्र आप्त प्रणीत हैं वही आगम हैं तथा आप्त के वचन आदि से होने वाले पदार्थों के ज्ञान को आगम कहते है।
आप्त किसे कहते हैं।	जो यथार्थ वक्ता हो और राग द्वेष से रहित हो वही आप्त होता है क्योंकि जो जीव राग द्वेष से युक्त है वह कभी भी यथार्थ वक्ता नहीं हो सकता। किन्तु जिसका राग द्वेष नष्ट होगया है वास्तव में वही आप्त है और जो उसके वचन होते है उन्हें ही आप्त वाक्य कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
सहभाव नियम किसे कहते हैं।	जो सदैव साथ २ ही रहे पदार्थ उन्हीं का नाम सह भाव नियम होता है। जैसे—रूप में रस अवश्य ही होता है तथा "व्याप्य" और व्यापक पदार्थों में अविना भाव सम्बन्ध होता है जैसे वृक्ष "व्यापक" और शिंशपा व्याप्य है।
क्रम भाव नियम किसे कहते हैं।	पूर्व चर और उत्तर चर पदार्थों में तथा कार्य कारणों में क्रम भाव नियम होता है जैसे कृतिका उदय पहले होता है और उसके पीछे रोहिणी का उदय होता है तथा अग्नि के बाद धुआं होता है इस प्रकार के भावों का तर्क से निर्णय किया जाता है।

प्रश्न	उत्तर
इसमें कोई दृष्टान्त दो।	जैसे--किसी ने कहा कि--शास्त्र शीघ्र पढ़ो। इस वाक्य में आकांक्षा योग्यता--और सन्निधि तीनों का अस्तित्व है तब ही शास्त्र शीघ्र पढ़ो! इस वाक्य से बोध हो सकता है--यदि इन तीनों पदों को भिन्न २ ता से पढ़ें। जैसे--शास्त्र--फिर कुछ समय के पश्चात् "शीघ्र" कह दिया तदनु बहुत समय के पीछे "पढ़ो" इस क्रिया पद का प्रयोग कर दिया इस प्रकार पढ़ने से वाक्य से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती अतः उक्त अर्थ वाला ही वाक्य प्रमाण हो सकता है।
अभाव किसे कहते हैं।	भाव का न होना वही अभाव होता है।

प्रश्न	उत्तर
वाक्यार्थ ज्ञान का हेतु क्या है।	जिसमें तीन बातें पाई जावें जैसे—आकांक्षा—योग्यता—और सन्निधि—
आकांक्षा किसे कहते हैं।	एक पद का पदान्तर में व्यतिरेक (विक्षेप) प्रयोग किये हुये अन्वय (सम्बन्ध) का अनुभव (समझना) न होना आकांक्षा कहलाती है।
योग्यता किसे कहते हैं।	अर्थ के अबाध (रुकावट का न होना) का नाम योग्यता है।
सन्निधि किसे कहते हैं।	पदों का अविलम्ब (शीघ्र) से उच्चारण करना।

प्रश्न	उत्तर
इसमें कोई दृष्टान्त दो ।	जैसे—किसी ने कहा कि—शास्त्र शीघ्र पढ़ो। इस वाक्य में आकांक्षा योग्यता—और सान्निधि तीनों का अस्तित्व है तब ही शास्त्र शीघ्र पढ़ो! इस वाक्य से बोध हो सकता है—यदि इन तीनों पदों को भिन्न २ ता से पढ़ें। जैसे—शास्त्र—फिर कुछ समय के पश्चात् "शीघ्र" कह दिया तदनु बहुत समय के पीछे "पढ़ो" इस क्रिया पद का प्रयोग कर दिया इस प्रकार पढ़ने से वाक्य से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती अतः उक्त प्रथ वाला ही वाक्य प्रमाण हो सकता है।
अभाव किसे कहते हैं।	भाव का न होना वही अभाव होता है।

प्रश्न	उत्तर
अभाव कितने कथन किये गये हैं ।	चार ।
उनके नाम बतलाओ ।	प्राग भाव, प्रध्वंसा भाव, अत्यन्ता भाव, अन्योऽन्या भाव,
प्राग भाव किसे कहते हैं ।	जैसे घट की उत्पत्ति के पहिले मिट्टी में घट का प्राग भाव कहा जाता है अर्थात् कारण रूप मिट्टी तो होती है किन्तु कार्य रूप का अभाव ही माना जाता है ।
प्रध्वंसा भाव किसे कहते हैं	जब कार्य रूप घट बनगया है तो फिर उस घट का विनाश भी अवश्य होगा अतः विनाश काल का प्रध्वंसा भाव कहते हैं ।

प्रश्न	उत्तर
अत्यन्ता भाव किसे कहते है।	जैसे जीव से अजीव नहीं होता अजीव से जीव नहीं बनसकता यह दोनों पदार्थ परस्पर अत्यन्ता भाव में रहते हैं इन्हींका नाम अत्यन्ता भाव है।
अन्योऽन्या भाव किसे कहते हैं।	जैसे घोड़ा बैल नहीं हो-सकता, बैल घोड़ा नहीं हो सकता—जो जिसका वर्तमान में पर्याय है उसका भावपर्यन्त वही रहता है। अन्य नहीं—इसी का नाम अन्योऽन्या भाव है।
प्रतिज्ञा किसे कहते हैं।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला है इस बात की अनुभूति को प्रतिज्ञा कहते हैं।
हेतु किसे कहते है।	जैसे यह पर्वत अग्नि वाला इस लिये है कि—इस से धूआं निकलता है—इसको हेतु कहते

प्रश्न	उत्तर
उदाहरण किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है। यही उदाहरण है।
उपनय किसे कहते हैं।	जो उदाहरण का प्रमाण है यही विशद उपनय कहा जाता है।
निगमन किसे कहते हैं।	जैसे जो जो धूम वाला होता है सो सो आग वाला होता है इसी प्रकार यह पर्वत भी धुएं के देखने से निश्चित होगया है कि—यह भी आग वाला है।
अनुमान प्रमाण के मुख्य कितने भेद हैं।	तीन।
उनके नाम बतलाओ।	पूर्ववत् १, शेषवत् २, दृष्टि साधर्म्यवत् ३।

प्रश्न	उत्तर
पूर्ववत् किसे कहते हैं।	जैसे किसी स्त्री का पुत्र बाल्यावस्था में कहीं चला गया जब फिर वह अपने नगर में आगया तब उसकी माता ने उसके पूर्व चिन्हों को देख कर निश्चय किया कि—यह मेरा ही पुत्र है तथा बाढ़ का ज्ञान धूम के चिन्ह देखने से आग का ज्ञान इत्यादि को पूर्ववत् कहते हैं।
शेषवत् के कितने भेद हैं।	पांच।
उनके नाम बतलाओ।	कार्य, कारण, गुण, अवयव, आश्रय,
कार्य किसे कहते हैं।	कारण से कार्य का ज्ञान होना जैसे शंख के शब्द से शंख का ज्ञान इत्यादि,
कारण किसे कहते हैं।	कारण से कार्य की उत्पत्ति होना—जसे—तंतुओं से वस्त्र, मृत्पिण्ड से घट इत्यादि,

प्रश्न	उत्तर
गुण किसे कहते हैं।	सुवर्ण निकष से जाना जाता है अर्थात् कसौटी पर सुवर्ण के गुण देखे जाते हैं पुष्प गंध से जाना जाता है, वस्त्र रस से इत्यादि।
अवयवज्ञान किसे कहते हैं।	अवयव से अवयवी का ज्ञान होजाता है जैसे—शृंगसे शृंगी का ज्ञान, दांतों से हाथी का ज्ञान, मोर पिच्छी से मोर का ज्ञान, खुर से घोड़े का ज्ञान, दो पद से मनुष्य का ज्ञान, केशरसे सिंह ज्ञान, एक सिक्थ मात्र के दलन से चावलोंके पकनेका ज्ञान, कवि का एक गाथा के बोलने से कवित्व का ज्ञान, इत्यादि अवयवों से अवयवी का ज्ञान होता है।

प्रश्न	उत्तर
आश्रय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे—धूप से आग का ज्ञान बगलों से जल का ज्ञान, बादलों से वृष्टि का ज्ञान, शीलाचार से कुल पुत्र का ज्ञान इत्यादि को आश्रय ज्ञान कहते हैं।
दृष्टि साधर्म्यवत् किसे कहते हैं।	दृष्टि साधर्म्य के दो भेद हैं—जैसे सामान्य दृष्ट और विशेष दृष्ट २
सामान्य दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे—एक पुरुष है उसी प्रकार और पुरुष भी होते है तथा जैसे एक मुद्रा होती है उसी प्रकार और मुद्रा भी होती हैं।

प्रश्न	उत्तर
विशेष दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे किसी ने–किसी को किसी स्थान पर देखा था उसने पर निश्चय किया कि–मैंने इस को अमुक स्थान पर देखा था यह वही पुरुष है इत्यादि प्रत्यभिज्ञान को विशेष दृष्ट कहते हैं।
जब तुम प्रवाह से संसार को अनादि मानते हो तो फिर–यह मांसाहारादि प्रवाह से अनादि क्यों नहीं है।	प्रियवर ! पुद्गल द्रव्य के पर्याय में सादि सान्त भांगा बतलाया गया है वा जब जैन शास्त्र ही इन कार्यों को सादि सान्त मानते हैं तो फिर हम मांसाहारादि को प्रवाह से अनादि अनन्त कैसे मानें–तथा यह मांसाहारादि प्रवाह से अनादि अनादि नहीं कहे जाते हैं किन्तु पर्याय से आदि है–जैसे–प्रवाह से मनुष्य अनादि कहे जाते हैं तद्वत् ही उन की कृतियें क्रियाएं भी प्रवाह से अनादि हैं।

प्रश्न	उत्तर
हमारे विचार में बिना बनाये तो कोई वस्तु नहीं बन सकती।	प्रियवर ! जब तुम जीव ईश्वर और प्रकृति को अनादि मानते हो तो बतलाईये यह बिना बनाये कैसे बन गये।
जैन धर्म का मन्तव्य क्या है।	जैन धर्म का मन्तव्य यही है कि–इस अनादि संसार चक्र में अनादि काल से जीव अपने किये हुये कर्मों द्वारा जन्म मरण करते चले आये हैं अपितु यह कर्म प्रवाह से अनादि है पर्याय से कर्म आदि है उन कर्मों को सम्यग् ज्ञान, सम्यग दर्शन, सम्यग् चारित्र, द्वारा क्षय करके मोक्ष प्राप्ति करना है।
सम्यग् ज्ञान किसे कहते हैं।	सच्चा ज्ञान—"यथार्थ ज्ञान"।

प्रश्न	उत्तर
विशेष दृष्ट किसे कहते हैं।	जैसे किसी ने-किसी को किसी स्थान पर देखा तो उसने यह निश्चय किया कि-मैंने इस को अमुक स्थान पर देखा था यह वही पुरुष है इत्यादि प्रत्यभिज्ञान को विशेष दृष्ट कहते हैं।
जब तुम प्रवाह से संसार को अनादि मानते हो तो फिर-यह मासावादि प्रवाह से अनादि क्यों नहीं है।	प्रियवर ! पुद्गल द्रव्य के पर्याय में सादि सान्त भांगा बतलाया गया है सो जब जैन शास्त्र ही इन कार्यों को सादि सान्त मानते हैं तो फिर इन मासावादि को प्रवाह से अनादि अन अनाए कैसे मानें-तथा यह मासावादि प्रवाह से अनान अनादि चले आते हैं किन्तु पर्याय से आदि है-जैसे-प्रवाह से मनुष्य अनादि चले आते हैं तद्वत् ही उन की कृषियें क्रियाएं भी प्रवाह से अनादि हैं।

प्रश्न	उत्तर
लक्षण किसे कहते हैं।	अतिधान्वित वस्तु समूह में से किसी एक विवक्षित वस्तु का निर्धार कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
लक्षण कितने प्रकार का होता है।	दो प्रकार का।
उन के नाम बतलाओ।	आत्म भूत लक्षण और अनात्म भूत लक्षण,,
आत्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो वस्तु के स्वरूप से भिन्न न हो उस को आत्म भूत लक्षण कहते हैं, जैसे अग्नि का लक्षण उष्णता "यह लक्षण अग्नि का आत्म भूत कहा जाता है।
अनात्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो आत्म स्वरूप से भिन्न हो उसी को अनात्म भूत लक्षण कहते हैं—जैसे, दण्ड वाले को लाओ "यह दण्ड लक्षण" "अनात्म भूत कहा जाता है"

प्रश्न	उत्तर
सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं।	सच्चा श्रद्धान—"यथार्थ निश्चय"
सम्यग् चारित्र किसे कहते हैं।	सच्चा आचरण—"यथार्थ चारित्र"
सम्यग् शब्द किस लिये जोड़ा गया है।	संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, इन दोषों के दूर करने के लिये।
संशय ज्ञान किसे कहते हैं।	जिस ज्ञान में संशय उत्पन्न हो जावे, जैसे यथा "यह, स्थाणु है वा पुरुष है"
विपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं।	विपरीत ज्ञान, जैसे—सीप में चांदी की बुद्धि तथा मृग तृष्णा का जल।
अनध्यवसाय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे मार्ग में चलते हुए, पाद में (पैर) में कण्टक लग गया तो फिर वह विचार करता कि—पाद में क्या लगा है इस प्रकार के संशय को अनध्यवसाय कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
लक्षण किसे कहते हैं।	अनिर्धारित वस्तु समूह में से किसी एक विवक्षित वस्तु का निर्धार कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
लक्षण कितने प्रकार का होता है।	दो प्रकार का।
उन के नाम बतलाओ।	आत्म भूत लक्षण और अनात्म भूत लक्षण,,
आत्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो वस्तु के स्वरूप से भिन्न न हो उस को आत्म भूत लक्षण कहते हैं, जैसे अग्नि का लक्षण उष्णता "यह लक्षण अग्नि का आत्म भूत कहा जाता है।
अनात्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो आत्म स्वरूप से भिन्न हो उसी को अनात्म भूत लक्षण कहते हैं—जैसे, दण्ड वाले को लाओ "यह दण्ड लक्षण" "अनात्म भूत कहा जाता है"

प्रश्न	उत्तर
सम्यग् दर्शन किसे कहते हैं।	सच्चा श्रद्धान—"यथार्थ निश्चय"
सम्यग् चारित्र किसे कहते हैं।	सच्चा आचरण—"यथार्थ चारित्र"
सम्यग् शब्द किस लिये जोड़ा गया है।	संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, इन दोषों के दूर करने के लिये।
संशय ज्ञान किसे कहते हैं।	जिस ज्ञान में संशय उत्पन्न हो जावे, जैसे क्या यह, स्थाणु है या पुरुष है"
विपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं।	विपरीत ज्ञान, जैसे—सीप में चांदी की बुद्धि तथा मृग तृष्णा का जल।
अनध्यवसाय ज्ञान किसे कहते हैं।	जैसे मार्ग में चलते हुए, पाद में (पैर) में कण्टक लग गया तो फिर यह विचार करना कि—पाद में क्या लगा है इस प्रकार के संशय को अनध्यवसाय कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
लक्षण किसे कहते हैं।	अनिधारित वस्तु समूह में से किसी एक विवक्षित वस्तु का निर्धार कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।
लक्षण कितने प्रकार का होता है।	दो प्रकार का।
उन के नाम बतलाओ।	आत्म भूत लक्षण और अनात्म भूत लक्षण,,'
आत्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो वस्तु के स्वरूप से भिन्न न हो उस को आत्म भूत लक्षण कहते हैं, जैसे अग्नि का लक्षण उष्णता "यह लक्षण अग्नि का आत्म भूत कहा जाता है।
अनात्म भूत लक्षण किसे कहते हैं।	जो आत्म स्वरूप से भिन्न हो उसी को अनात्म भूत लक्षण कहते हैं—जैसे, दण्डे वाले को लाओ "यह दण्ड लक्षण" "अनात्म भूत कहा जाता है"

प्रश्न	उत्तर
लक्षणाभास किसे कहते हैं।	जो वास्तविक लक्षण तो नहीं हो परन्तु लक्षण सरीखा मालूम पड़े उस को लक्षणाभास कहते हैं"
अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं	जो लक्ष्य के एक देश में रहे उसको अव्याप्त कहते हैं" जैसे गौ का लक्षण शावलपना।
अति व्याप्ति दोष किसे कहते हैं।	जो लक्ष्य मात्र में रह कर अलक्ष्य में भी रहे उस को अति व्याप्ति लक्षण कहते हैं जैसे—गौ का लक्षण "पशु पना" यद्यपि—गौ भी पशु है परन्तु यह लक्षण भैंसादि में भी पाया जाता है इसीलिए। यह अति व्याप्ति दोष कहा जाता है॥

प्रश्न	उत्तर
असंभव दोष किसे कहते हैं।	जिस का लक्ष्य में रहना किसी प्रकार से भी सिद्ध न हो, जैसे मनुष्य का लक्षण सींग" यह मनुष्य का लक्षण किसी भी मनुष्य में घटित नहीं होता इस लिये इस लक्षण को असम्भवी लक्षण कहते हैं।
स्याद्वादशब्द का क्या अर्थ है।	यह पदार्थ इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है,जैसे जो पदार्थ है वह अपने गुण में सद्रूप है पर गुण में असद्रूप है इस को स्याद्वाद कहते हैं।
	तथा यह पदार्थ ऐसे भी है और ऐसे भी हैं इसप्रकार के कथन को स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न	उत्तर
आत्मा का आत्मभूत लक्षण कौनसा है।	चैतन्यता—उपयोग और बलवीर्य यह दोनों लक्षण आत्मा के आत्म भूत हैं
अनात्म भूत लक्षण कौनसा है।	जैसे "क्रोधी आत्मा" इत्यादि क्योंकि क्रोध के परमाणु आत्मा के आत्म भूत में नहीं होते किन्तु वास्तव में पुद्गलास्तिकाय का द्रव्य है राग द्वेष के कारण से यह परमाणु आत्मा में आते हैं—यदि उन का आत्म भूत कहा जाए तो यह कभी भी आत्मा से पृथक् न होवे परन्तु आत्मा उन परमाणुओं को छोड़ कर मोक्ष हो जाता है या जीवन मुक्त हो जाता है।

दशवां पाठ।

(श्रमणो पासक विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! इस असार संसार में सदा चार ही जीवन है सदा चार से ही सर्व गुणों की प्राप्ति हो सकती है जिस जीव ने सदा चार को मित्र नहीं वनाया उस का जीवन इस संसार में भार रूप ही होता है,, क्योंकि–यदि सदा चार से रहित जीवन है तो उस का जीवन पशु के समान ही होता है।

खान, पान, भोग, शीत, उष्ण इत्यादि जो पशु कष्ट सहन करते हैं वही कारण सदा चार से पतित जीव को मिल जाते हैं आदर्श रूप वही जीव वन सकता है जो सदा चार से अलंकृत हो, जिस का जीवन पवित्र नहीं है, उस का प्रभाव किसी पर पड़ नहीं सकता, धर्म पथ से भी वह गिर जाता है, लोग उस को सुदृष्टि से नहीं देखते हैं।

अतएव ! मनुष्यों के जीवन का सार सदा चार ही है संसार पक्ष में अनेक प्रकार के सदा चार होने प्रा-औ

प्रश्न	उत्तर
आत्मा का आत्मभूत लक्षण कौनसा है।	चैतन्यता—उपयोग और बलवीर्य यह दोनों लक्षण आत्मा के आत्म भूत हैं
अनात्म भूत लक्षण कौन सा है।	जैसे "क्रोधी आत्मा" इत्यादि क्योंकि क्रोध के परमाणु आत्मा के आत्म भूत में नहीं होते किन्तु वास्तव में पुद्गलास्तिकाय का द्रव्य है राग द्वेष के कारण से यह परमाणु आत्मा में आते हैं—यदि उन का आत्म भूत कहा जाए तो यह कभी भी आत्मा से पृथक् न होवे परन्तु आत्मा उन परमाणुओं को छोड़ कर मोक्ष हो जाता है वा जीवन मुक्त हो जाता है।

दशवां पाठ।

(श्रमणो पासक विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! इस असार संसार में सदा चार ही जीवन है सदा चार से ही सर्व गुणों की प्राप्ति हो सकती है जिस जीव ने सदा चार को मित्र नहीं बनाया उस का जीवन इस संसार में भार रूप ही होता है,, क्योंकि—यदि सदा चार से रहित जीवन है तो उस का जीवन पशु के समान ही होता है।

खान, पान, भोग, शीत, उष्ण इत्यादि जो पशु कष्ट सहन करते हैं वही कारण सदा चार से पतित जीव को मिल जाते हैं आदर्श रूप वही जीव बन सकता है जो सदा चार से अलंकृत हो, जिस का जीवन पवित्र नहीं है, उस का प्रभाव किसी पर पड़ नहीं सकता, धर्म पथ से भी वह गिर जाता है, लोग उस को सुदृष्टि से नहीं देखते हैं।

अतएव ! मनुष्यों के जीवन का सार सदा चार ही है संसार पक्ष में अनेक प्रकार के सदा चार होने पर भी

मुनियों की संगति करना और उन की यथोचित सेवा करना यह परम उच्च कोटि का सदाचार का अंग है, बहुत से आत्मा अच्छे आचार वाले होने पर भी साधु संगति से वञ्चित ही रहते हैं वे सर्व प्रकार से सदाचार के फल का उपलब्ध नहीं कर सकते। ज्ञान और विज्ञान से वे पृथक् ही रह जाते हैं।

इस लिये। जो साधु गुणों से युक्त मुनि हैं उन्हीं का नाम श्रमण है सदाचारियों के लिये वह "उपास्य" हैं सदाचारी उस के उपासक होते हैं इसी लिये। सदाचारियों का नाम, "श्रमणोपासक" कहा जाता है, अपितु सदाचार की प्राप्ति गुणों पर ही निर्भर है।

गुणों की प्राप्ति करना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है यह गुण कहीं से प्राप्त होजाएं वहां से ही ले लेने चाहियें।

सज्जनो! गुण ही जीवन का सार है गुणों से ही जीव सत्कार के पात्र बन सकते हैं, प्रतिष्ठा भी गुणों से ही मिल सकती है जैन ग्रन्थों में श्रमणोपासक के २१ गुण वर्णन किए गये हैं जैसे कि—

१ क्षुद्र वृत्तिवाला न होना और अन्याय से धन उत्पन्न न करना क्योंकि– जो अन्याय से धन उत्पन्न करते हैं वे सदा चारियों की पंक्ति में नहीं गिने जाते न वे धन्यवाद के पात्र ही हैं मित्रो ! अन्याय करने का फल कभी भी अच्छा नहीं होता इसलिये अन्याय न करना चाहिये, और क्षुद्र वृत्तिवाला पुरुष सभ्यता से गिर जाता है सदैव पिशुनता (चुगली) में ही लगा रहता है. और धर्म कर्म से गिर जाता है इस लिए ! पहिला गुण यही है कि–अक्षुद्र होना। २ रूपवान्–जैसे कोकिला का स्वरूप है कुरूपों का विद्या रूप है उसी प्रकार मनुष्यों का शील रूप है जो पुरुष शील से रहित होता है वह शरीर के सुन्दर होने पर भी असुन्दर ही गिना जाता है लोगों में माननीय नहीं रहता–यदि उसके पास धन भी है तो भी वह सभ्य पुरुषों में निंदनीय ही होता है जैसे–रावण–अतिसुन्दर होने पर भी लोगों में उस की सुन्दरता नहीं गिनी जाती अपितु जिन पुरुषों ने अपने शील को नहीं छोड़ा और प्रतिज्ञा में दृढ़ रहे हैं वे संसार की दृष्टि में पूजनीय हैं। अतएव ! सदाचारियों का रूप शील है यद्यपि पांचों इन्द्रिय पूर्ण, शरीर निरोग्यता यह भी गुण रूपवान्

मुनियों की संगति करना और उन को यथोचित सेवा करना यह परम उत्कृष्ट कोटि का सदाचार का अंग है, बहुत से आत्मा अच्छे आचार वाले होने पर भी साधु संगति से वञ्चित ही रहते हैं वे सर्व प्रकार से सदाचार के फल को उपलब्ध नहीं कर सकते। ज्ञान और विज्ञान से वे पृथक् ही रह जाते हैं।

इस लिए ! जो साधु गुणों से युक्त मुनि हैं उन्हीं का नाम श्रमण है सदाचारियों के लिये वह "उपास्य" हैं सदाचारी उस के उपासक होते हैं इसी लिये ! सदाचारियों का नाम, "श्रमणोपासक" कहा जाता है, अपितु सदाचार की प्राप्ति गुणों पर ही निर्भर है।

गुणों की प्राप्ति करना प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कर्तव्य है यह गुण कहीं से प्राप्त हो जाएं वहां से ही ले लेने चाहियें।

सज्जनो ! गुण ही जीवन का सार है गुणों से ही जीव सत्कार के पात्र बन सकते हैं, प्रतिष्ठा भी गुणों से ही मिल सकती है जैन ग्रन्थों में श्रमणोपासक के २१ गुण वर्णन किए गये हैं जैसे कि—

बोलने वाला किसी को भी अप्रिय नहीं लगता जो उक्त गुणों से गिरे हुए हैं वे किसी को भी प्रिय नहीं लगते क्यों कि लोक तो जिस प्रकार देखते हैं उसी प्रकार कह देते हैं अतएव लोक प्रिय बनना अपने स्वाधीन ही है जब अवगुणों को छोड़ दिया तब अपने आप सब को प्रिय लगने लग जाता है—जैसे क्रोध, माया, लोभ, छल, चुगली, धूर्त्तपना, हठ, इत्यादि जब अवगुणों को छोड़दिया तब लोक प्रिय बनना कोई कठिन नहीं है फिर उत्तम वही होता है जो अपने गुणों से सुप्रसिद्ध हो—किन्तु जो पिता के नाम से प्रसिद्ध है वह मध्यम है इस लिये ! उत्तम गुणों द्वारा लोक में सुप्रतिष्ठित होना चाहिये। इसी से लोक में वा राजादि की सभा में माननीय पुरुष बन जाता है ॥

५—अक्रूरचित्त—चित्त क्रूर न होना चाहिए—जिन आत्माओं का चित्त क्रूर होता है वह निर्दयी कहलाते हैं क्रूर चित्त वाले आत्मा किसी पर भी परोपकार नहीं कर सकते वे सदैव औरों को छलने के भावों में लगे रहते हैं उन के सामने यदि कोई हिंसादि क्रियाएँ करते

कि गिने जाते हैं और इन्हीं गुणों से रूपवान् कहा जाता है परन्तु वास्तव में शील गुण ही प्रधान माना जाता है अतएव ! यह गुण अवश्य ही धारण करने चाहियें ।

३ प्रकृति सौम्य—स्वभाव से शुद्ध हृदय वाला होवे—क्योंकि जब आधार (भाजन) ठीक होगा तब ही उसमें गुण निवास कर सकते हैं—जिन की प्रकृति कठिन वा कुटिल है वे कदापि धर्म के योग्य नहीं हो सकते—स्वच्छ भूमि में ही शुद्ध बीज की उत्पत्ति हो सकती है जो भूमि अशुद्ध है उसमें शुद्ध बीज भी अंकुर नहीं दे सकता इसी प्रकार जिस आत्मा का हृदय शुद्ध है प्रकृति सौम्य है वही गुणों का भाजन हो सकता है जैसे पशुओं में गौ—मृग—आदि जीव कुटिल प्रकृति वाले न होने के कारण लोगों के प्रेम के पात्र बन जाते हैं और सिंह (व्याघ्र) लोमड़ी चिता आदि जीव सरल और सौम्य प्रकृति वाले न होने से वे विश्वास के योग्य नहीं होते अतएव ! प्रकृति सौम्य अवश्य ही होनी चाहिए ।

लोकप्रिय—अपने गुणों द्वारा लोक में प्रिय होना चाहिए क्योंकि—प्रिय कार्य करने वाला और प्रिय

बोलने वाला किसी को भी अप्रिय नहीं लगता जो फक गुणों से गिरे हुए हैं वे किसी को भी प्रिय नहीं लगते क्योंकि लोक तो जिस प्रकार देखते हैं उसी प्रकार कह देते हैं अतएव लोक प्रिय बनना अपने स्वाधीन ही है जब अवगुणों को छोड़ दिया तब अपने आप सब का प्रिय लगने लग जाता है—जैसे क्रोध, माया, लोभ, छल, चुगली, धूर्त्तपना, हठ, इत्यादि जब अवगुणों का छोड़ दिया तब लोक प्रिय बनना कोई कठिन नहीं है फिर उत्तम वही होता है जो अपने गुणों से सुप्रसिद्ध हो—किन्तु जो पिता के नाम से प्रसिद्ध है वह मध्यम है इस लिये ! उत्तम गुणों द्वारा लोक में सुप्रतिष्ठित होना चाहिये। इसी से लोक में वा राजादि की सभा में माननीय पुरुष बन जाता है ॥

५—अक्रूरचित्त—चित्त क्रूर न होना चाहिए—जिन आत्माओं का चित्त क्रूर होता है वह निर्दयी कहलाते हैं क्रूर चित्त वाले आत्मा किसी पर भी परोपकार नहीं कर सकते वे सदैव औरों को छलने के भावों में लगे रहते हैं उन के सामने यदि कोई हिंसादि क्रियाएँ करते

हों फिर भी वह आर्द्र चित्त नहीं होते तथा क्रूर चित्त वाले जीव धार्मिक कार्यों में भी भाग नहीं लेते न वे धार्मिक जनों को श्रेष्ठ ही समझते हैं अपितु उन से सदैव क्रूर ही कर्म हात हैं जिन का फल उनके लिए पशु योनि वा नरक गति है।

सज्जनों ! इस अवगुण वाला जीव कदापि श्रेष्ठ कर्म में प्रविष्ट नहीं होता जैसे सांप का विष उगलना का स्वभाव होता है ठीक उसी प्रकार क्रूर चित्त वाले जीव का स्वभाव भी निर्दय भाव में ही रहता है अतएव सदाचारी जीव को अक्रूर चित्त वाला ही होना चाहिए।

६—भीरु—पाप कर्म के करने से भय मानना यही भीरु शब्द का अर्थ है अर्थात् पाप कर्म से सदैव भय मानता रहे जैसे लोक—सांप वा सिंहादि पशुओं से डरते हैं तथा शत्रु से भय मानते हैं व राजादि का भय मानते हैं उसी प्रकार पाप कर्म का भी भय मानना चाहिए क्योंकि जो कर्म किया गया है वह फल अवश्यमेव देगा अतएव ! पाप करते भय खाना चाहिए, किन्तु धर्म करते हुए निर्भीक बन जाना चाहिये—माता पिता वा राजादि भी यदि धर्म से भति

कूल उपदेश दें तो उसे भी न मानना चाहिए किन्तु यदि देवते भी धर्म से गिराना चाहें तो भी न गिरना चाहिये, अतएव सिद्ध हुआ कि पाप कर्म करते समय भय युक्त और धर्म करते समय निर्भीक बनना सुपुरुषों का मुख्य कर्त्तव्य है।

७–अशठ–धूर्त्त न होना–जो पुरुष मायावी होतेहैं वह भी धर्म के योग्य नहीं होते क्योंकि–माया (छल) नाम एक प्रकार आभ्यन्तरिक मल है जब तक वह आत्मा से निकल न जाये तब तक आत्मा शुद्धि के मार्ग पर नहीं आसकता जैसे किसी रोगी के उदर में मल विकार विशेष हो, फिर उस को बल प्रद औषधी भी फलदायक नहीं हो सकती जब तक कि–मल न निकल जाये। जब मल निकल जाता है तब उस का औषधियों का सेवन सुख प्रद हो जाता है उसी प्रकार जब आत्मा के अन्तःकरण से माया रूप मल निकल जाता है तब उसमें भी ज्ञानादि ठीक रह सकते हैं, इस लिये सदा चारी पुरुष धूर्तता से रहित होने चाहिये।

८–दाक्षिण्य–निपुणता होनी चाहिये–क्योंकि–जो पुरुष निपुण होते हैं वही धर्मादि क्रियाएं कर सकते हैं

किन्तु जो मृदुतादि गुणों से युक्त हैं उन से धार्मिक आदि क्रियाएं होनी असम्भव प्रतीत होती हैं क्योंकि–शास्त्रों में लिखा है कि–तीन आत्माएं शिक्षा के अयोग्य हैं जैसे कि–दुष्ट, मूर्ख, और क्रोधी, यह तीनों आत्मा शिक्षा के अयोग्य होते हैं यद्यपि मूर्ख किसी का नाम नहीं है किन्तु जो अपने हित की बात को नहीं सुनता यदि सुनता है तो उस को मानता नहीं है उसी का नाम मूर्ख है जैसे किसी मूर्ख को ज्वर का आवेश हो गया किन्तु उस को फिर तृतीय ज्वर आने लग गया तब डाक्टर साहब ने पूछा कि–तुम्हें ज्वर नित्य प्रति आता है तो उस ने उत्तर में निवेदन किया कि–डाक्टर साहब नित्य प्रति तो नहीं आता किन्तु एक दिन आता है और एक दिन नहीं आता तो फिर डाक्टर साहब ने कहा कि–क्या तुम्हें बारी का ज्वर है तो उस ने उत्तर में कहा कि नहीं साहब, बारी का ज्वर तो मुझे नहीं है डाक्टर साहब कहने लगे, कि, भाई, इसी को बारी कहते हैं तो उस मूर्ख ने कहा कि–मैं तो इस को बारी नहीं मान सकता, फिर डाक्टर साहब ने कहा कि–तुम बारी किसे मानते हो तो उसने डाक्टर साहब से कहा कि–डाक्टर

साहब मैं बारी उस को मानता हूं, यदि एक दिन ज्वर आप को चढ़ जाए और एक दिन मुझे चढ़ जाए, जब ऐसे हो जाए तो मैं बारी मानूंगा, इतनी बात सुन कर डाक्टर साहब हंस पड़े, इससे सिद्ध हुआ कि मूर्ख किसी का नाम नहीं है जो हित की बात नहीं समझता वही मूर्ख है—गृहस्थ को दाक्षिण्य होना चाहिये।

९—लज्जालु—अकार्यों से लज्जा करने वाला, पाप कर्म करते समय लज्जा करनी चाहिये, लज्जा से ही गुणों की प्राप्ति हो सकती है जो पुरुष निर्लज्ज होते हैं वे पाप कर्मों में प्रवेश कर जाते हैं, इस लिए माता, पिता, गुरु, स्थविर (वृद्ध) इत्यादि की लज्जा करनी चाहिये, पापों से बचना चाहिए, पुरुषों और स्त्रियों की लज्जा ही आभूषण है इसी के द्वारा धर्म पंक्ति में आसकते हैं काम बिगड़ते हुओं को लज्जा वाला पुरुष ठीक कर सकता है अतएव सिद्ध हुआ लज्जा करना सुपुरुषों का मुख्य कर्तव्य है।

१०—दयालु—दया करने वाला त्रस और स्थावरों की सदैव रक्षा करने वाला इतना ही नहीं किन्तु जो

अपने ऊपर अपकार करने वाले हैं उन्हों पर भी दया भाव करने वाला होवे-क्योंकि जहां पर दया के भाव हैं वहां ही धर्म रह सकता है जहां दया के भाव ही नहीं हैं तो फिर वहां पर कुछ भी नहीं है इसलिये। सब जीवों पर दया करना यही सत्पुरुषों का लक्षण है किन्तु हिंसा तीन प्रकार से कथन की गई है जैसे मन, वाणी, और काय,- मन से किसी के हानिकारक भाव न करने चाहिये वाणी से कटुक वचन न बोलना चाहिये, काय से किसी को पीड़ा न देनी चाहिये, जिस के तीनों योगों से दया के भाव हैं वह सर्व प्रकार से दयालु कहा जा सकता है अतएव। दयावान् ही गुणों का भाजन बन सकता है।-

११-माध्यस्थ-माध्यस्थ भाव को अवलम्बन करने वाला यदि कोई कार्य विपरीत किसी ने कर दिया है तो उस को शिक्षा करनी तो आवश्यकीय है किन्तु उसे के ऊपर राग द्वेष न करना चाहिये, क्योंकि जिस ने अनुचित कर्म किया है उस का फल तो उसने भोगना ही है परन्तु उस के ऊपर रागद्वेष करके अपने कर्म न बांधलेने चाहिये, शिक्षा करना पुरुषों का धर्म है मानना न मानना

उस की इच्छा पर निर्भर है इस लिए । जो श्रेष्ठ गृहस्थ हैं वे सदैव माध्यस्थ भाव का अवलम्बन किया करते हैं जो पुरुष माध्यस्थ भाव का अवलम्बन नहीं कर सकते हैं वे धर्म में भी स्थिर भाव नहीं रख सकते हैं, अतएव ! सिद्ध हुआ कि–माध्यस्थ भाव अवश्य ही अवलम्बन करना चाहिये ।

१२–सौम्यदृष्टि–दर्शन मात्र से ही आनन्दित करने वाला, जिस की दृष्टि सौम्य होती है उस के मस्तक पर क्रोध के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते इस लिए ! जो उसके दर्शन कर लेता है उस का मन प्रफुल्लित हो जाता है– क्रोध, मान, माया, और लोभ के कारण से ही क्रूरदृष्टि हुआ करती है जब उस के चारों कषायों मन्द हो जाती हैं तब उस आत्मा की दृष्टि भी सौम्य दृष्टि बन जाती है इसलिए ! यह गुण अवश्य ही धारण करना चाहिये ।

१३–गुण पक्ष पाती–गुणों का पक्ष पात करना चाहिए किन्तु–जो कुल क्रम से कोई व्यवहार आ रहा हो किन्तु वह व्यवहार सभ्यता से रहित है तो उस के छोड़ने में पक्ष पात न करना चाहिए, तथा यदि मित्र

भा न तो लोग ही हंसें और नहीं काम बिगड़े अवश्य। जो कार्य करना हो उस के-फल फल जानने के लिए दीर्घ दर्शी होना चाहिए यदि दीर्घ दर्शी गुण उत्पन्न न किया जाएगा तो हर एक काम में प्रायः हंसी का ही होना बना रहेगा।

१६-विशेषज्ञ-गुण और अगुण के जानने वाला होना चाहिए। क्योंकि-जो गुण और अगुण की परीक्षा नहीं कर सकता वह कदापि धर्म की परीक्षा भी नहीं कर सकता। जिस की बुद्धि में पक्षपात नहीं है वही गुण और अवगुण का खोज में लग जाता है किन्तु जिस की बुद्धि पक्षपात से मलीमस हो रही है सो भला फिर वह गुण और अगुण की परीक्षा कैसे कर सकता है जहां पर जो उस का राग है वहां पर यदि अगुण भी पड़े हों तो उस को तो वह गुण ही दिखाई देते हैं यदि उसका राग नहीं है वहां गुण होने पर भी अवगुण दृष्टि गोचर होते हैं अतएव। विशेषज्ञ होना आवश्यकीय सिद्ध हो गया विशेषज्ञ होना ही गुणों की परीक्षा करना है।

१७-वृद्धानुगः-वृद्धों की शैली पर चलने वाला-जैसा पिता गुरु आदि के विनय करने से हर एक गुण

की प्राप्ति हो सकती है यदि विनय न किया गया तो हर एक गुण भी अवगुण हो जाता है, जैसे जल के सिंचन करने से वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है इसी प्रकार विनय से हर एक गुण की प्राप्ति हो जाती है वृद्धों के पथ पर चलने से लोकापवाद भी मिट जाता है अपितु वृद्धों का मार्ग यदि सुमार्ग होवे तो, यदि वृद्धों का मार्ग धर्म से प्रतिकूल होवे तो उस के त्याग देने में किंचित् मात्र भी संकुचित भाव न करने चाहिए जैसे—बहुत से लोगों की कुल क्रम से मांस भक्षण और मदिरा पान की प्रथा चली आती है तो उस के त्यागने में विलम्ब न होना चाहिए, और बहुत से कुलों में धार्मिक नियम कुल क्रम से चले आते हों जैसे—"जूआ, मांस, मदिरा, वेश्या संग, परनारी सेवन, चोरी, शिकार" इन का त्याग चला आता है तो इन नियमों को तोड़ना न चाहियें वा—सम्वर, सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, के करने की जो प्रथा चली आती हो तो उसे भंग न करना चाहिये—और विनय धर्म का परित्याग भी न करना चाहिये यही "वृद्धानुग" है।

१८—विनीत—विनयवान् होना चाहिये-विनय से बिगड़े हुए काम सुधर जाते हैं विनय धर्म का मूल है

कुपथ में जाता हुआ है और शत्रु ठीक मार्ग पर स्थित है तो उस समय गुणों का पक्ष पात करना चाहिए।

यद्यपि हठ करना अच्छा नहीं है—जो पुरुष गुणों का पक्ष पाति है वह सब का ही मित्र है, किन्तु वह किसी का भी शत्रु नहीं है अतएव। गुणों का पक्ष पात करना सभ्य पुरुषों का मुख्य कर्त्तव्य है जो गुणों के पक्ष पाती नहीं हैं किन्तु राग पक्ष हो खिंचा रहे हैं वे धर्म के योग्य नहीं गिने जाते—अतः गुणों का ही पक्ष पात करना चाहिये।

१४—सत्कथा सुपक्ष युक्त—सत्कथा करने वाला और स्वपक्ष से युक्त अर्थात्—यथार्थ कहने वाला, शुद्ध आदि वाला या अपने निर्णय किए हुए सिद्धान्त में—दृढ़ता रखने वाला होना चाहिए—जब स्वसिद्धान्त में पूर्ण दृढ़ता हो जावे तो फिर असत्कथा कदापि न करनी चाहिये, यदि ऐसे कहा जाए कि—जब उस का सिद्धान्त दृढ़ है तो फिर वह असत्कथा कैसे कर सकता है तो इस का समाधान इस प्रकार किया जाता है कि—जैसे सत्कथा इच्छा चपलतादि क्रियाओं में भी अप्रमत्तादि ने

करे किन्तु यथार्थ ही कहने वाला होवे। तथा—जो हर मत वाले असत्कथा करने वाले हैं उन के संग को छोड़ देवे या असत्यकथा करने वालों की प्रशंसा भी न करे क्योंकि—उन की प्रशंसा करने से अज्ञात जन उन्हीं पर विश्वास करने लग जाते हैं तब उसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता अतएव ! सिद्ध हुआ कि—सत्कथा "स्वपक्ष युक्त" होना आवश्यकीय है तभी गुण आ सकते हैं।

१५—दीर्घ दर्शी— जो कार्य करना हो, पहिले उस का फल फल जान लेना चाहिए जब विचार से काम किया जायगा तब उस में विकृतिपणा उत्पन्न नहीं होता यदि हर एक कार्य में औत्सुक्य ही किया जायगा तो फिर न तो कार्य ही प्रायः सुधरता है और नहीं लोगों में प्रतिष्ठा मिलती है तथा बहुत से कार्य ऐसे होते हैं जिनके करते समय तो अच्छे लगते हैं किन्तु उन का परिणाम अच्छा नहीं निकलता और बहुत से कार्य ऐसे भी हैं जो करते समय तो यश विशेष नहीं मिलता परन्तु परिणाम में उस का नाम सदा के लिए स्थिर हो जाता है क्योंकि जो बुद्धि काम बिगाड़ करउत्पन्न होती है यदि वह बुद्धि पहिले ही उत्पन्न हो

ों न वो लोग ही हँसें और नहीं काम बिगड़े अतएव।
जो कार्य करना हो उस के-फल फल जानने के लिए
दीर्घ दर्शी होना चाहिये यदि दीर्घ दर्शी गुण उत्पन्न न
किया जायगा तो हर एक काम में प्रायः हँसी का ही
होना बना रहेगा।

१६-विशेषज्ञ-गुण और अवगुण का जानने वाला
होना चाहिये। क्योंकि-जो गुण और अवगुण की परीक्षा
नहीं कर सकता वह कदापि धर्म की परीक्षा भी नहीं
कर सकता जिस की बुद्धि में पक्षपात नहीं है वही गुण
और अवगुण का स्वरूप में लग जाता है किन्तु जिस की
बुद्धि पक्षपात से मलीमस हो रही है वो भला फिर वह
गुण और अवगुण की परीक्षा कैसे कर सकता है जहां पर
तो उस का राग है वहां पर यदि अवगुण भी पड़े हों तो
उस को तो वह गुण ही दिखाई देते हैं यदि उसका राग
नहीं है वहां गुण होने पर भी अवगुण दृष्टि गोचर होते
हैं अतएव ! विशेषज्ञ होना आवश्यकीय सिद्ध हो गया
विशेषज्ञ होना ही गुणों की परीक्षा करना है।

१७-वृद्धानुगः-वृद्धों की शैली पर चलने वाला-
माता पिता गुरु आदि के विनय करने से हर एक गुण

की प्राप्ति हो सकती है यदि विनय न किया गया तो हर एक गुण भी अवगुण हो जाता है, जैसे जल के सिंचन करने से वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है उसी प्रकार विनय से हर एक गुण की प्राप्ति हो जाती है वृद्धों के पथ पर चलने से लोकापवाद भी मिट जाता है अपितु वृद्धों का मार्ग यदि सुमार्ग होवे तो, यदि वृद्धों का मार्ग धर्म से प्रतिकूल होवे तो उस के त्याग करने में किंचित् मात्र भी संकुचित भाव न करने चाहिए जैसे—बहुत से लोगों की कुल क्रम से मांस भक्षण और मदिरा पान की प्रथा चली आती है तो उस के त्यागने में विलम्ब न होना चाहिये, और बहुत से कुलों में धार्मिक नियम कुल क्रम से चले आते हों जैसे—"जूआ, मांस, मदिरा, वेश्या संग, परनारी सेवन, चोरी, शिकार" इन का त्याग चला आता है तो इन नियमों को तोड़ना न चाहिये वा—सम्बर, सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, के करने की जो प्रथा चली आती हो तो उसे भंग न करना चाहिये—और विनय धर्म का परित्याग भी न करना चाहिये यही "वृद्धानुग" है।

१८—विनीत—विनयवान् होना चाहिये- विनय से बिगड़े हुए काम सुधर जाते हैं विनय धर्म का मूल है

विनय करने से ज्ञान की भी शीघ्र प्राप्ति हो जाती है, विनय से सत्पथ में आरूढ़ हो जाता है, जैसे सुवर्ण और रत्नों की हर एक को इच्छा रहती है उसी प्रकार विनयवान् की भी इच्छा सब को लगी रहती है उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है वह सब के लिए आधार रूप होजाता है—शास्त्रों में प्रवीणता के कारण से वह सब स्थानों पर आदर पाता है अतएव ! सब जीवों को विनयवान् होना चाहिये।

१६—कृतज्ञ—कृतज्ञ होना चाहिये—जिस ने किसी समय उपकार कर दिया है उस को विस्मृत न करना चाहिये—अपितु उस के किए हुए उपकार को स्मरण करके उस का उपकार विशेष मानना चाहिये, क्योंकि—शास्त्रों में लिखा है कि—चार कारणों से आत्मा अपने गुणों का नाश कर बैठते हैं जैसे कि—क्रोध करने से १, और दूसरों की ईर्षा करने से २, मिथ्या हठ करने से ३, कृतघ्न होने से ४ कृतघ्नता के समान कोई भी पाप नहीं बतलाया गया इस लिये ! कृतज्ञ होना चाहिये । अपितु जो कृतघ्न होते हैं वे विश्वास पात्र नहीं रहते और जैसे क्रोधी को बुद्धि छोड़ जाती है वा सूखे हुये सरोवर को पक्षि छोड़ जाते हैं उसी प्रकार कृतघ्न पुरुष को सज्जन

पुरुष भी छोड़ देते हैं ॥ अतः कृतज्ञ भी बनना चाहिये।

२०—परहितार्थकारी—सब जीवों का हितैषी होना श्रावक का मुख्य धर्म है—जा—जिस प्रकार उन जीवों को शान्ति पहुंचे अथवा अन्य जीवों के कष्ट दूर होवें उसी प्रकार श्रावक को करना चाहिए। परोपकार भी मुख्य धर्म है जो परोपकार नहीं कर सकता उस का जीवन संसार में भार रूप ही माना जाता है—ज्ञान के साथ परोपकार करना यह परम शूरवीरता का लक्षण है। परोपकारी सर्व स्थानों पर पूजनीय बन जाता है। तीर्थंकरों का नाम आज कल इस लिये लिया जा रहा है कि—उन्होंने असीम भर संसार भर में उपकार किया. लाखों जीवों को सन्मार्ग में स्थापन किया उसी कारण से वह सदा अमर है और सब जीवों के आश्रय भूत है अतः परहितार्थकारी बनना गृहस्थ का मुख्य धर्म है।

२१—लब्धलक्ष—माता पिता—गुरु आदि की चेष्टाओं को देख कर उनकी इच्छानुसार कार्य करने और उनको प्रसन्न रखना यही लब्धलक्षता है तथा धर्म-दानादि में अग्रणीय बनना इतना ही नहीं किन्तु धर्म कार्यों में

अधिक भाग लेना और लोगों को धर्म कार्यों में उत्साहित करना यह सब क्रियायें प्रभावना में ही गिनी जाती हैं तात्पर्य-यह है कि-धार्मिक जो पर्व हैं उन में विना राज्यादिक भाग ना जाना, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि संसारी कार्यों में भाग अग्रणीय होता है किन्तु जो पवित्र कार्यों में अग्रणीय बनना है यही एक शूरवीरता का लक्षण है। धर्म दान और अधर्म दान का परस्पर इतना अन्तर है जैसे अमावस्या और पौर्णमासी का परस्पर अन्तर है, इसी प्रकार जो धर्मदान किया जाता है वह तो पौर्णमासी के समान है और जो अधर्मदान है वह अमावस्या की रात्री के तुल्य है। यदि ऐसे कहा जाए कि-धर्मदान कौनसा है और अधर्म कौनसा है तो इसका उत्तर इतना ही है कि-जिस दान करने से धर्म कार्यों में सहायता पहुंचे वा धर्मियों की रक्षा हो जाय उसे ही धर्मदान कहते हैं।

"तथा जिस दान करने से अधर्म की पोषणा हो और धर्म से विरुद्ध हो वही 'अधर्म दान' कहलाता है जैसे हिंसक पुरुषों की सहायता करना और उनके लिए

हुये । कार्यों की अनुमोदन करना यही अधर्म दान है"
सो-धर्मदान करना गृहस्थों का मुख्य धर्म है अतएव!
लब्धलक्ष गुण वाला गृहस्थ को अवश्य ही होना
चाहिए ।

और गृहस्थों का यह भी नियम शास्त्रों में वर्णन
किया गया है कि-न्यायसे लक्ष्मी उत्पन्न करते हुए
गृहस्थों के योग्य है कि-यदि वे अपने समान कुल में
विवाह करते है तब तो वे शान्ति से जीवन व्यतीत कर
सकते है नहीं तो प्रायः अशान्ति उनको बनी रहती है
तथा देशाचार को जो नहीं छोड़ता है वह भी धर्म से
पराङ्मुख नहीं हो सकता— यह बात मानी हुई है कि-
जिस देश की भाषा वा वेष ठीक रहता है वह देश
उन्नति के शिखर पर जा पहुंचता है, जिसकी भाषा
और वेष बिगड जाता है उस देश की उन्नति के दिन
पीछे पड़ जाते हैं,

जो गृहस्थ देश धर्म को ठीक प्रकार से समझते हैं
वे श्रुत वा चारित्र धर्म को भी पालन कर सकते हैं।

फिर किसी के भी-अवगुणवाद न बोलने चाहिए

किन्तु जो अव्यक्त पुरुष हैं उनके तो अवगुण बाद विशेष वर्णने योग्य हैं साथ ही जो गृहस्थ भाव (लाभ) व्यय (खरच) का विवेक रखते हैं वे कभी भी प्रतिष्ठा का हानि के दुःख का अनुभव नहीं करते जो इन बातों का विचार कम रखते हैं वे अन्तिम दुःखों का ही अनुभव करते हैं और धर्म से भी उनकी रुचि कम हो जाती है अत एव ! धनोपार्जन के साथ हर्षों के साथ ही अनेक और गुणों के धारण करने की आवश्यकता है।

जब गुणों का समूह इकट्ठा हो जायगा, तब वे यथेष्ट सुखों की प्राप्ति कर सकेंगे, अतएव ! सिद्ध हुआ कि— देश, जाति, और धर्म की, वही सेवा कर सकता है, जो पहले अपने गुणों (कर्तव्यों) को जानता हो—या अपने कर्तव्यों का ज्ञान कर धर्मादि की अवश्य ही सेवा करनी चाहिए।

ग्यारहवाँ पाठ ।

(श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी)

प्रिय पाठको ! जिस महान् आत्मा का आज हम आप को कुछ परिचय देना चाहते हैं वे परम पूज्य जगत् प्रसिद्ध श्री भगवान् महावीर स्वामी जी हैं जिन का कि दूसरा नाम श्री वर्द्धमान भी है–यह भगवान् जैन धर्म के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर थे इन का समय बौद्ध सम कालीन का था जिस को आज २५२० वर्ष के लगभग होते हैं यह महात्मा हुआ—५९९ वर्ष पहिले इस भारत वर्ष के क्षत्रिय कुण्ड पुर नामक नगर में जो उस समय परम रमणीय जन गणों से पूर्ण था पानी के अतीव होने के कारण से दुर्भिक्ष का तो वहां पर अभाव ही था किन्तु राजा के पुण्य के प्रभाव से सर्व प्रकार के उपद्रव वहां शान्त हो रहे थे, मरी आदि रोगों से भी लोग शान्त थे किन्तु नई से नई कलाओं का आविष्कार करते थे जिस के कारण से वह "क्षत्रिय कुण्ड पुर" ग्राम ग्राम की अवस्था को छोड़ कर राजधानी की दशा को प्राप्त हो गया था ।

किन्तु जो अल्पज्ञ पुरुष हैं उनके वा अबगुण्ड बाद विशेष वर्जने योग्य हैं साथ ही जो गृहस्थ आय (लाभ) व्यय (खरच) का विवेक रखते हैं वे कभी भी अविद्या का हानि के दुःख का अनुभव नहीं करते जो इन बातों का विचार कम रखते हैं वे अनेक दुःखों का ही अनुभव करते हैं और धर्म से भी उनकी रुचि कम हो जाती है अत एव ! श्रमणोपासकों को बारह व्रतों के साथ ही अनेक और गुणों के धारण करने की आवश्यकता है।

जब गुणों का समूह इकट्ठा हो जायगा, तब वे यथेष्ट सुखों की प्राप्ति कर सकेंगे, अतएव ! सिद्ध हुआ कि— देश, जाति, और धर्म की, वही सेवा कर सकता है, जो पहिले अपने गुणों (कर्तव्यों) को मानता हो—वह अपने कर्तव्यों का भान कर धर्मादि की अवश्य ही सेवा करनी चाहिए।

ग्यारहवाँ पाठ ।

(श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी)

प्रिय पाठको ! जिस महान् आत्मा का [illegible] हम आप को कुछ परिचय देना चाहते हैं वे परम पूज्य जगत् प्रसिद्ध श्री भगवान् महावीर स्वामी जी हैं जिन का कि दूसरा नाम श्री वर्द्धमान भी है—यह भगवान् जैन धर्म के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर थे इन का समय बौद्ध सम कालीन का था जिस को आज २५२० वर्ष के लगभग होते हैं यह महात्मा ईस्वी—५९९ वर्ष पहिले इस भारत-वर्ष के क्षत्रिय कुण्ड नामक नगर में जो उस समय परम रमणीय [illegible] से पूर्ण था पानी के अतीव होने के कारण से दुर्भिक्ष का तो वहां पर अभाव ही था किन्तु राजा के पुण्य के प्रभाव से सर्व प्रकार के उपद्रव वहां शान्त हो रहे थे, मरी आदि रोगों से भी लोग [illegible] थे किन्तु नई से नई कलाओं का आविष्कार करते थे जिस के कारण से वह "क्षत्रिय कुण्ड पुर" ग्राम ग्राम की अवस्था को छोड़ कर राजधानी की दशा को प्राप्त हो गया था ।

किन्तु जो अभ्यस्त पुरुष हैं उनके तो अभ्यासवाद विशेष वर्जने योग्य हैं साथ ही जो गृहस्थ आय (लाभ) व्यय (खरच) का विवेक रखते हैं वे कभी भी प्रतिष्ठा की हानि के दुःख का अनुभव नहीं करते जो इन बातों का विचार कम रखते हैं वे अन्तिम दुःखों का ही अनुभव करते हैं और धर्म से भी उनकी रुचि कम हो जाती है अतएव ! श्रमणोपासकों को बारह व्रतों के साथ ही अनेक और गुणों के धारण करने की आवश्यकता है।

जब गुणों का समूह इकट्ठा हो जायगा, तब वे यथेष्ट सुखों की प्राप्ति कर सकेंगे, अतएव ! सिद्ध हुआ कि— देश, जाति, और धर्म की, वही सेवा कर सकता है, जो पाहले अपने गुणों (कर्तव्यों) को जानता हो—अतः अपने कर्तव्यों का ज्ञान कर धर्मादि की अवश्य ही सेवा करनी चाहिए।

ग्यारहवाँ पाठ ।

(श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी)

प्रिय पाठको ! जिस महान् आत्मा का आज हम आप को कुछ परिचय देना चाहते हैं वे परम पूज्य जगत् प्रसिद्ध श्री भगवान् महावीर स्वामी जी हैं जिन का कि दूसरा नाम श्री वर्द्धमान भी है-यह भगवान् जैन धर्म के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर थे इन का समय बौद्ध सम-कालीन का था जिन को आज २५२० वर्ष के लगभग होते हैं यह महात्मा ईस्वी—५९९ वर्ष पहिले इस भारत वर्ष के क्षत्रिय कुण्ड पुर नामक नगर में जो उस समय परम रमणीय जल ग्रामों से पूर्ण था पानी के अतीव होने के कारण से दुर्भिक्ष का तो वहां पर अभाव ही था किन्तु राजा के पुण्य के प्रभाव से सर्व प्रकार के उपद्रव वहां शान्त हो रहे थे, मरी आदि रोगों से भी लोग शान्त थे किन्तु नई से नई कलाओं का आविष्कार करते थे जिस के कारण से वह "क्षत्रिय कुण्ड पुर" ग्राम ग्राम की अवस्था को छोड़ कर राजधानी की दशा को प्राप्त हो गया था ।

किन्तु जो अभ्यस्त पुरुष हैं उनके तो अवगुण वाद विशेष वर्णने योग्य हैं साथ ही जो गृहस्थ भाव (काम) स्वच्छ (स्वरच) का विवेक रखते हैं वे कभी भी अविद्या का हानि के दुःख का अनुभव नहीं करते जो इन बातों का विचार कम रखते हैं वे अन्तिम दुःखों का ही अनुभव करते हैं और धर्म से भी उनकी रुचि कम हो जाती है अत एव ! श्रमणोपासकों को बारह व्रतों के साथ ही अनेक और गुणों के धारण करने की आवश्यकता है।

जब गुणों का समूह इकट्ठा हो जायगा, तब वे यथेष्ट सुखों की प्राप्ति कर सकेंगे, अतएव ! सिद्ध हुआ कि— देश, जाति, और धर्म की, वही सेवा कर सकता है, जो पाठक अपने गुणों (कर्तव्यों) को जानता हो—अतः अपने कर्तव्यों का ज्ञान कर धर्मादि की अवश्य ही सेवा करनी चाहिए।

ग्यारहवाँ पाठ ।

(श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जी)

प्रिय पाठको ! जिस महान् आत्मा का आज हम आप को कुछ परिचय देना चाहते हैं वे परम पूज्य जगत् प्रसिद्ध श्री भगवान् महावीर स्वामी जी हैं जिन का कि दूसरा नाम श्री वर्द्धमान भी है—यह भगवान् जैन धर्म के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर थे इन का समय बौद्ध धर्म कालीन का था जिस को आज २५२० वर्ष के लगभग होते हैं यह महात्मा हुआ—५९९ वर्ष पहिले इस भारत वर्ष के क्षत्रिय कुण्ड पुर नामक नगर में जो उस समय परम रमणीय जन गणों से पूर्ण था पानी के अतीव होने के कारण से दुर्भिक्ष का तो वहां पर आभाव ही था किन्तु राजा के पुण्य के प्रभाव से सर्व प्रकार के उपद्रव वहां शान्त हो रहे थे, मरी आदि रोगों से भी लोग शान्त थे किन्तु नई से नई कलाओं का आविष्कार करते थे जिस के कारण से वह "क्षत्रिय कुण्ड पुर" ग्राम ग्राम की अवस्था को छोड़ कर राजधानी की दशा को प्राप्त हो गया था ।

किन्तु जो अल्पज्ञ पुरुष हैं उनके तो अवगुण्य वाद विशेष करने योग्य हैं साथ ही जो गृहस्थ आप (काम) अर्थ (स्वरूप) का विवेक रखते हैं वे कभी भी प्रतिष्ठा का हानि के दुःख का अनुभव नहीं करते जो इन बातों का विचार कम रखते हैं वे अन्तिम दुःखों का ही अनुभव करते हैं और धर्म से भी उनकी रुचि कम हो जाती है अतएव ! धर्मोपासकों को बारह व्रतों के साथ ही अनेक और गुणों के धारण करने की आवश्यकता है।

जब गुणों का समूह इकट्ठा हो जायगा, तब वे यथेष्ट सुखों की प्राप्ति कर सकेंगे, अतएव ! सिद्ध हुआ कि— देश, जाति, और धर्म की, वही सेवा कर सकता है, जो पहले अपने गुणों (कर्तव्यों) को जानता हो—अतः अपने कर्तव्यों को जान कर धर्मादि की अवश्य ही सेवा करनी चाहिए।

महाराजा के एक "नन्दि वर्द्धन" नाम वाला कुमार था जो ७२ कलाओं में निपुण और राज्य की धुरा को प्रेम से उठाए हुए था इसी कारण से वह "युवराज" पदवी का भी धारक था और उस की एक कनिष्ठा भगिणी "सुदर्शना" नामा थी जो शीलवती और सुशीला थी, "महाराजा सिद्धार्थ" श्री भगवान् पार्श्वनाथ प्रभु के मुनियों के श्रावक थे, और श्रावक वृत्ति को प्रसन्नता पूर्वक पालन करते थे।

एक समय की बात है कि महारानी "त्रिशला" जब अपने पवित्र राज्य भवन के वास भवन में सुख शय्या में सोई पड़ी थी, तब अर्धरात्रि के समय पर महारानी ने १४ स्वप्न देखे जैसे कि—

"हाथी १ वृषभ २ सिंह ३ लक्ष्मी देवी ४ पुष्पों की माला ५ चन्द्रमा ६ सूर्य ७ ध्वजा ८ कलश ९ सरोवर १० क्षीर समुद्र ११ देव विमान १२ रत्नों की राशि १३ अग्नि शिखा १४"। जब राणी जी ने इन चतुर्दश स्वप्नों को देख लिया तब उसकी आंख खुल गई फिर वह अपनी शय्या से उठकर महाराजा सिद्धार्थ के पास गई

चारों ओर वह नगर आरामों और जलाशयों से सुशोभित हो रहा था और व्यापार के लिये वह नगर "केन्द्रस्थान" बन गया था, "जहां पर" न्याय, नीति में कुशल "शास्त्र विशारद", सर्व राजाओं के, गुणों से अलंकृत—ज्ञात वंशीय सिद्धार्थ महाराज अनुशासन करते थे 'जन' के न्याय से प्रजा अत्यन्त प्रसन्न थी। इसी कारण से प्रजा को चार से सर्व प्रकार से उपद्रवों की शान्ति थी कला कौशलता की अत्यन्त वृद्धि होती जाती थी महा राजा सिद्धार्थ का एक छोटा भाई भी था जो "सुपार्श्व" नाम से सुप्रसिद्ध था महाराजा के अन्तरंग कार्यों में सहायक था और महाराजा सिद्धार्थ की रानी का नाम 'त्रिशला क्षत्राणी' था जो सभी के गुणों (लक्षणों) से अलंकृत थी।

परन्तु पतिव्रत धर्म का मनसा वचसा कर्मणा से पालन करती थी इसी लिए "सतियों में शिरोमणी थी" अतएव महाराजा सिद्धार्थ के साथ जिस का अत्यन्त स्नेह था जिसे से गृह की लक्ष्मी "दिन दो गुनी रात चौगुनी" के न्याय से वृद्धि प्राप्त कर रही थी।

महावीर स्वामी का शुभजन्म हुआ, जन्म दिन बड़े समारोह के साथ मनाया गया राजा के यहां आप का जन्म होते ही हर प्रकार से सुख बढ़ने लगा और राजा ने उत्साह पूर्वक बहुत सा दान भी किया और प्रजा को पहले की भांति उस से भी बढ़ कर हर प्रकार से सुख देने लगा इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे और आप के अन्य संस्कार भी समय २ पर बड़े समारोह से होते हुये पालना होती रही मगर आप का चित्त इस बाल्यावस्था से ही ले कर संसार से उदास रहता था सदैव यही भाव उत्पन्न रहते थे कि मै अपनी आत्मा का सुधार करके परोपकार करूं परोपकार ही सत्पुरुषों का धर्म है।

इस प्रकार के भाव होने पर भी माता पिता के अत्यन्त आग्रह से "यशोदा" राज कुमारी से विवाह किया गया फिर आप के गृह में कुमारी का जन्म हुआ जिसका नाम, प्रिय सुदर्शना कुमारी रक्खा गया परन्तु वैराग्य भाव में जब अत्यन्त भाव उत्कृष्टता में आ गये तब माता पिता के स्वर्ग वास होजाने के पश्चात् ३० वर्ष की अवस्था में आप बड़े भाई "नन्दिवर्द्धन"

राजा को मधुर वाक्यों से जगा कर अपने आए हुए चौदह स्वप्नों को विनय पूर्वक निवेदन किया, जिनको सुन कर महाराजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और रानी से कहने लगे कि ! हे देवी तूने बड़े पवित्र स्वप्नों का देखा है जिसका फल यह होगा कि—हमारी सर्व प्रकार की वृद्धि होते हुए चक्रवर्ती कुमार उत्पन्न होगा।

इस प्रकार रानी को स्वप्न के फल बतला कर प्रातः काल में राजा ने अपने नगर के ज्योतिषियों को बुला कर चौदह स्वप्नों के फलादेश को पूछा तब ज्योतिषियों ने कहा कि हे राजन ! इन स्वप्नों के फलादेश से यह निश्चय होता है कि आप के घर में एक ऐसे राज कुमार का जन्म होगा जो कि चक्रवर्ती या तीर्थङ्कर देव होगा जिसकी महिमा का विवरण हम नहीं कर सकते तब श्री महाराज ने उन स्वप्न पाठकों का सत्कार और पारितोषिक देकर विसर्जन किया किन्तु उसी दिन से महारानी जी शास्त्रोक्त विधि के अनुसार गर्भ रक्षा करने लगी फिर सवा नौ मास के पश्चात् चैत्र शुक्ला १३ त्रयोदशी के दिन हस्त उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र के योग में आधी रात्रि के समय में श्री श्रमण भगवान्

महावीर स्वामी का शुभजन्म हुआ, जन्म-दिन बड़े समारोह के साथ मनाया गया राजा के यहां आप का जन्म होते ही इस प्रकार से सुख बढ़ने लगा और राजा ने उत्साह पूर्वक बहुत सा दान भी किया और प्रजा को पहले की भांति उस से भी बढ़ कर हर प्रकार से सुख देने लगा इस प्रकार दिन व्यतीत होने लगे और आप के अन्य संस्कार भी समय २ पर बड़े समारोह से होते हुये पालना होती रही मगर आप का चित्त इस बाल्यावस्था से ही ले कर संसार से उदास रहता था सदैव यही भाव उत्पन्न रहते थे कि मैं अपनी आत्मा का सुधार करके परोपकार करूं परोपकार ही सत्-पुरुषों का धर्म है।

इस प्रकार के भाव होने पर भी माता पिता के अत्यन्त आग्रह से "यशोदा" राज कुमारी से विवाह किया गया फिर आप के गृह में कुमारी का जन्म हुआ जिसका नाम, प्रिय सुदर्शना कुमारी रक्खा गया परन्तु वैराग्य भाव में जब अत्यन्त भाव उत्कृष्टता में आ गये तब माता पिता के स्वर्ग वास होजाने के पश्चात् ३० वर्ष की अवस्था में आप बड़े भाई "नन्दिवर्द्धन"

किया तो उस समय आप के बड़े भाई ने आपको आज्ञा नहीं दी और आप अपने बड़े भाई का हुक्म मानते हुये दो साल और ठहरे जब आप की अवस्था ३० साल की हो गई तो आप ने अपना राज पाट अपने बड़े भाई को सौंप दिया और अपनी तमाम धन दौलत दान करते हुये अपनी आत्मा के साधन और पर उपकार के लिये चित्त में ठानी तो यह महान् आत्मा ने इस प्रकार की वृत्ति धारण की अपने चित्त में इस बात को सोचा कि पहले इस से कि मैं किसी और कार्य में लगूं यह बेहतर मालूम होता है कि अपनी आत्मा को इस तरह साधन करूं कि वह तपस्या रूपी अग्नि से कुन्दन हो जावे इस पर विचार करते हुये उन्होंने कड़ी से कड़ी तपस्या की जो यहां तक थी कि अपने जीवन के १२ वर्ष इस तपस्या रूपी मन्ज़िल के तै करने में आप को लगाने पड़े दो बार तो आप ने छः छः मास पर्यन्त अन्न जल नहीं किया चार चार मास तो आप ने कई बार किये एक बार जब कि आप ध्यान में खड़े थे तो आप को एक संगम नाम वाला अभव्य देव मिल गया उस ने ६ मास पर्यन्त आप को भयङ्कर से भयङ्कर कष्ट दिये किंतु

की अनुमति से दीक्षित हो गये दीक्षा लेते समय ही आप ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि बारह वर्ष पर्यन्त मैं घोर से घोर कष्टों को सहन करूंगा और अपने शरीर की रक्षा भी न करूंगा इतने काल में आप को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा।

जिन का कि दृश्य इस कदर भयानक है कि उसे देखना तो दूर रहा उस के सुनने से भी हृदय कांपता है परन्तु यह आपकी ही महान् आत्मा और महान् शक्ति थी कि आप ने उन सहन किया हम जैन पाठकों के लिए यहां पर उन के इस जीवन की चन्द घटनायें देते हैं जिस से कि सब को ज्ञात होगा कि श्री भगवान् महावीर देव स्वामी किस कदर उच्च आत्मा और गम्भीर सहनशीलता होने के अतिरिक्त महान् तपस्वी थे और कारण था कि उन्हों ने महान् से महान् तपस्या करके अपने कर्मों का नाश करते हुये केवल ज्ञान को प्राप्त किया।

महात्मा महावीर जी त्यागी के जीवन की चन्द घटनायें।

१—पाठको जिस समय भगवान् महावीर जी ने गृहस्थ आश्रम को त्याग कर सन्यास लेने का [illegible]

करते हुवे आप के दया भाव से नेत्र आर्द्र हो गये ।

२—श्री महावीर भगवान् ने जो तपस्या धारण कर रक्खी थी उस का समय अभी पूरा न होने के कारण आप अपने कर्मों के क्षय करने के वास्ते अनार्य भूमि में चले गये वहां पर भी अनार्य लोगों ने आप को असीम कष्ट दिये जिन के सुनने से रोमांच खड़े हो जाते हैं एक समय जब कि आप पर्वत पर ध्यानावस्था में बैठे हुये थे उन लोगों ने आप को पहाड़ से नीचे गेर दिया परन्तु आप अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए ।

जब कभी आप भिक्षा के लिये ग्राम में जाते तो कुत्ते आप के पीछे लोग लगाते थे । केश लुंचन किए मुष्टि आदि से प्रहार किए परन्तु आप का मन ऐसा दृढ़ था जो कि देवों से भी चलायमान नहीं हो सकता था इस प्रकार के कष्ट होने पर भी आप ने उन लोगों पर मन से भी द्वेष नहीं किया सदैव रोज यही विचार करते रहते थे कि जैसे प्राणी कर्म करते हैं उन्हीं के अनुसार फल भोगते हैं अतः जैसे मैंने कर्म किये हैं वैसे ही मैंने

कि मैंने अपने ज्ञान में अनुभव किया है जिस का कि फल निर्वाण (याने सच्चा सुख) हासिल करना है उस को इस संसार के दुःखों से पीड़ित हुये हुये प्राणियों को भी अनुभव करवा देना चाहिये इस उद्देश को सामने रखते हुये आप अनु क्रम से विहार करते हुये सब से पहले अपापा पुरी (पावापुरी) में पधारे।

(भगवान् का उपदेश)

जब भगवान् महावीर स्वामी जी केवल ज्ञान को प्राप्त कर पावा पुरी में पधारे तो पहला उपदेश भगवान् का यहां पर हुआ चौसठ इन्द्रों ने समव सरण को रचा आपने वहां सिंहासन पर विराजमान हो कर सार्वजनिक हितैषी धर्म उपदेश किया जिस को सुन कर प्रत्येक जन हर्ष प्रगट करता था उसी समय उसी नगरी में सोमल ब्राह्मण ने एक यज्ञ रचा हुआ था जिस में उस समय के बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण इन्द्र भूति, अग्नि भूति, वायू भूति, व्यक्त सुधर्मा मंडी पुत्र, मौर्य पुत्र, अकंपित अचल भ्राता मैतार्य प्रभास यह ११ विद्वान् अपनी २ शिष्य

फल भोगनी है यदि अब मैंने द्वेष किया तो आगे के लिये और नये कर्मों का बंध हो जायगा।

अतएव! अब मुझे शान्ति से ही इस के फल को भोगना चाहिये इस प्रकार तप करते हुये और नाना प्रकार के कष्टों को सहन करते हुये भी आप अपने आत्म ध्यान में ही लगे रहे।

इस प्रकार महान् तप करते हुये नाना प्रकार के कष्टों को सहन कर आप विहार करते हुये जृंभि नामक नगर के बाहर ऋजु पालिका नदी के उत्तर कूल पर श्यामाक नामक गृह पति के कर्षण के समीपस्थ व्यक्त चैत्य (स्थान) की ईशान कूण में शाल वृक्ष के समीप विराजमान हो गये तब आप को वैसाख शुक्ल दशमी के दिन विजय नामक महूर्त में हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग के पिछले पहर में दो उपवास के साथ शुक्ल ध्यान में प्रवेश किये हुओं को केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति हो गई।

जब आप को केवल ज्ञान प्राप्त हो चुका तब आपने विचार किया कि अब मुझे संसार में यह धर्म जिस का

और श्री भगवान् ने अनेक राजों और राज कुमारों को दीक्षित किया अपने सद्द उपदेश से चौदह हजार साधु ३६ हजार आर्यायें बनाई लाखों श्रावक बनाये और महाराजा 'श्रेणिक' 'कुणिक' चेटक, जिनशत्रु, उदायन, इत्यादि महाराजों की आप पर असीम भक्ति थी एक समय की बात है आप विचरते हुये चपा नगरी के बाहिर पूर्ण भद्र उद्यान (बाग़) में पधार गये तब महाराजा कुणिक बड़े समारोह के साथ आप के दर्शनों को आये और उनके साथ सहस्रों नर नारियें थीं उस समय आप ने "अर्द्ध मागधी" भाषा में सार्व जन उपदेश किया जिसका सारांश यह था कि हे आर्यो मैं जीव का मानता हूं और अजीव को भी मानता हूं इसी प्रकार पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष को भी मानता हूं और प्रवाह से संसार अनादि है पर्याय से आदि है सो इस संसार से छूटने का मार्ग केवल सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, और सम्यग् चारित्र ही है अतः इन्हीं के द्वारा जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

हे आर्यो! शुभ कर्मों के शुभ ही फल होते हैं। और

मंडली के साथ उस यज्ञ में आये हुये थे जब उन्होंने भी भगवान् महावीर स्वामी के धर्म उपदेश की महिमा को आप लोगों के मुख से श्रवण किया तब वह उस को सहन न कर सके और आपस में विचार करने लगे कि हमें महावीर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके उन के धर्म को और उन की कीर्ति को उन्नत न होने देना चाहिये जिससे कि हमारे ब्राह्मण धर्म को हानि न हो ऐसा सोच कर वह महावीर स्वामी के पास गये और धर्म सम्बन्धी उन्होंने प्रश्नोत्तर किये जब भगवान् ने अपने केवल ज्ञान के बल से उन के मनों को जानते हुये उन के भ्रमों के उत्तर दिये तो वह सत्य रूप अमृत को पाकर वहीं समवसरण (व्याख्यान मंडप) में ही दीक्षित हो गये श्री भगवान ने एक ही दिन में चौंवालीस सौ को दीक्षित किया इन में सब से बड़े इन्द्र भूति जी महाराज थे जिन का गौतम गोत्र था इस लिये वह गौतम स्वामी के नाम से सुप्रसिद्ध हैं यही ११ श्री भगवान् के मुख्य शिष्य थे इन्होंने चौदह पूर्व रचे जैन धर्म का स्थान २ पर प्रचार किया लाखों लोगों का सत्पथ में आरूढ़ किया और स्थान २ पर शास्त्रार्थ करके जैन धर्म का झंडा फहराया

और श्री भगवान् ने अनेक राजों और राज कुमारों को दीक्षित किया अपने सद्‌ उपदेश से चौदह हजार साधु ३६ हजार आर्यायें बनाईं लाखों श्रावक बनाये और महाराजा 'श्रेणिक' 'कुणिक' चेटक, जिनशत्रु, उदायन, इत्यादि महाराजों की आप पर असीम भक्ति थी एक समय की बात है आप विचरते हुये चपा नगरी के बाहिर पूर्ण भद्र उद्यान (बाग़) में पधार गये तब महाराजा कुणिक बड़े समारोह के साथ आप के दर्शनों को आये और उनके साथ सहस्रों नर नारियें थीं उस समय आप ने "अर्द्ध मागधी" भाषा में सार्व जन उपदेश किया जिसका सारांश यह था कि हे आर्यो मैं जीव का मानता हूं और अजीव को भी मानता हूं इसी प्रकार पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष को भी मानता हूं और प्रवाह से संसार अनादि है पर्याय से आदि है सो इस संसार से छूटने का मार्ग केवल सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, और सम्यग् चारित्र ही है अतः इन्हीं के द्वारा जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

हे आर्यो! शुभ कर्मों के शुभ ही फल होते हैं। और

अशुभ कर्मों के अशुभ ही फल होते हैं, जिस प्रकार प्राणी कर्म करते हैं प्रायः कर्मों के फल भी उसी प्रकार भोगते हैं।

हे भव्य जीवो! तुम कभी भी धर्म कार्यों में आलस्य मत करो। यह समय पुनः पुनः मिलना अति कठिन है— आर्य देश, आर्य कुल उत्तम संहनन, शरीर निरोग, पांचों इन्द्रिय पूर्ण, गुरुओं की संगति, इत्यादि जो आप लोगों को सामग्री प्राप्त हो रही है इस से धर्म का लाभ लो और राज धर्म यही है कि—किसी से भी अन्याय से वर्ताव न किया जावे प्रजा पर न्याय-पूर्वक अनुकंपा करना यही राजाओं का मुख्य धर्म है परन्तु प्रजा पर तब ही न्याय से वर्ताव हो सकता है जब राजे लोग अपने स्वार्थ, और व्यसनों को छोड़ देवें।

हे देवानुप्रियो! मनुष्य जन्म, शास्त्र श्रवण, धर्म पर दृढ़ विश्वास—और शास्त्रानुसार आचरण, जब यह चारों अंक जीव को प्राप्त हो जायें। तब ही जीव मोक्ष प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार के पवित्र उपदेश को सुन कर सभा अत्यन्त प्रसन्न हुई फिर यथा-शक्ति नियमादि लोगों ने धारण किये। राजा बड़ा हर्षित होता हुआ भगवान् को वंदना करके अपने राज्य भवनों में चला गया।

भगवान् महावीर स्वामी और अहिंसा का प्रचार।

जिस समय भगवान् महावीर व स्वामी का सत्य-मयी और संसार में शान्ति लाने वाला सच्चा अहिंसक धर्म फैलने लगा तब उस समय के ब्राह्मण लोग जो हिंसा में ही धर्म मानते थे जिन के यहां यज्ञ करना ही केवल महान् धर्म सब के लिये बताया गया था और उन यज्ञों में घोर हिंसा यानी पशु वध जो होता था वह धर्मानुकूल समझा जाता था और देश में उस समय जिधर भी देखो यज्ञों ही यज्ञों का जोर होने से हिंसा ही हिंसा की इतनी प्रबलता थी कि मानो खून की नदियां वह रही थीं इस अवस्था को देख कर भगवान् महावीर स्वामी का हृदय कांप उठा और उन्हों ने इस का विरोध अति जोर शोर से करना प्रारंभ किया और उन राजाओं ने भी जिनको कि आपने धर्म उपदेश सुना कर अपने अनुयायी कर लिये थे उन्होंने भी अहिंसा प्रचार बहुत ही किया किन्तु आपने उन यज्ञों में होम होते हुये लाखों पशुओं को बचाया जिस का फल यह हुआ कि

इस संसार से ब्राह्मण धर्म के वह हिंसामयी यज्ञ उठ गये और अहिंसा धर्म का महान् प्रचार किया जब इस प्रकार अहिंसा धर्म का जोर बढ़ने लगा और महावीर स्वामी की जय जय कार होने लगी तो फिर ब्राह्मणों ने जैन धर्म से और भी द्वेष करना आरम्भ कर दिया यही कारण था कि जैन धर्म वालों को नास्तिक वेद निंदक आदि तरह २ के दोष लगाये मगर उनके ऐसा करने पर भी जैन धर्म की गूंज पहले की भांति और भी ज्यादा होती गई ।

जब भगवान् महावीर स्वामी ने उन हिंसक यज्ञों को देश से हटा देने में सफलता प्राप्त कर ली तब उन्हों ने उस समय जो गौतम बुद्ध ने क्षणिक वाद का मत खड़ा किया था और मीमांसकों ने वेदवाद के सिद्धान्त को ही सर्वोत्कृष्ट बतलाया था न्याय पूर्वक युक्तियों से युक्त दोनों मतों का खण्डन भी किया ।

एक समय की बात है कि—श्रीभगवान् वर्द्धमान स्वामीजी से विनयपूर्वक रोहा नामक आपके सुयोग्य

शिष्य निम्नप्रकार से प्रश्न पूछने लगे और आपने उनके संशय दूर किये-जैसे कि।

प्रश्न—हे भगवन्! प्रथम लोक है किम्वा अलोक है।

उत्तर—हे रोह! यह दोनों पदार्थ अनादि हैं क्योंकि-यह दोनों किसी के बनाये हुए नहीं हैं यदि इन का कोई निर्माता माना जाये तब यह पूर्व वा पश्चात् सिद्ध होसकते हैं सो जब निर्माता का अभाव है तब इनका अनादित्व स्वतः ही सिद्ध है अनादि होनेसे इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कह सकते हैं।

प्रश्न-प्रथम जीव है वा अजीव है?

उत्तर-हे भद्र! जीव और अजीव दोनों अनादि हैं क्योंकि जब इनकी उत्पत्ति मानी जाए तब कार्यरूप जीव का नाश अवश्य ही होगा जब नाश सिद्ध होगया तब नास्तिक वाद का प्रसंग आजाएगा फिर पुण्य पाप बंध मोक्षादि आकाश के पुष्पवत् सिद्ध होंगे तथा दोनों का कारण क्या है! इस प्रकार की शंका होनेपर संकर वा अनवस्था दोष की भी प्राप्ति सिद्ध होगी इसलिये! यह दोनों वस्तुएँ स्वतः सिद्ध होने से अनादि हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रथम भव्य जीव (मोक्ष जाने वाले) हैं वा अभव्य जीव (मोक्ष न जाने वाले) हैं।

उत्तर—हे रोह ! मोक्ष गमन योग्य वा अयोग्य यह भी दोनों प्रकार के जीव अनादि हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रथम मोक्ष है किम्वा संसार है।

उत्तर—हे रोह ! दोनों ही अनादि हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रथम सिद्ध (अजर अमर) हैं वा संसार है।

उत्तर—हे रोह ! संसार आत्मा वा मोक्ष आत्मा यह दोनों अनादि हैं इनको प्रथम वा अप्रथम नहीं कहा जासकता—क्योंकि—आदि नहीं है इसलिये मोक्ष आत्मा और संसार आत्मा यह दोनों अनादि हैं (सिद्ध आत्माओं का ही नाम ईश्वर है)

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रथम अंडा और पीछे कुकड़ी है वा प्रथम कुकड़ी पीछे अंडा है।

उत्तर—हे रोह ! अंडा कहां से उत्पन्न होता है हे भगवन् ! कुकड़ी से, फिर कुकड़ी कहां से उत्पन्न होती है, हे भगवन् ! अंडा से। हे रोह ! जब इस प्रकार से दोनों

का सम्बन्ध है तब सिद्ध हुआ कि-यह दोनों प्रवाह से अनादि हैं प्रथम कौन है । इस प्रकार नहीं कह सकते ।

इस प्रकार रोह अनगार ने अनेक प्रश्नों को पूछा श्रीभगवान् ने उनके सर्व संशयों को दूर किया ।

एक समय श्री गौतम स्वामी ने श्रीभगवान् से प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! गर्भावास में जीव इन्द्रिय लेकर आता है वा इन्द्रिय छोड़ कर गर्भावास में जीव प्रविष्ट होता है तब श्रीभगवान् ने प्रतिउत्तर में प्रतिपादन किया कि-हे गौतम ! इन्द्रियों को लेकर भी आता है छोड़ कर भी आता है तब श्री गौतम प्रभुजी ने फिर शंका की कि-हे भगवन् ! यह कथन किस प्रकार से है, तब श्रीभगवान् ने फिर उत्तर दिया कि-हे गौतम द्रव्य इन्द्रियों को जीव छोड़ कर आता है और भावेन्द्रियों को (सत्तारूप) को जीव लेकर आता है जिसके द्वारा फिर द्रव्य इन्द्रियों की निष्पत्ति होजाती है गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि-हे भगवन् ! जीव शरीर को छोड़ कर गर्भावास में आता है वा शरीर को लेकर गर्भावास में आता है ।

तब श्रीभगवान् ने उत्तर में प्रतिपादन किया कि—हे गौतम ! आत्मा शरीर को छोड़कर भी जाता है और लेकर भी जाता है जैसे कि औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारिक शरीर, इन तीनों शरीरों को छोड़कर तैजस, और कार्मण्य शरीरों को लेकर जीव गर्भावास में प्रवेश करता है क्योंकि—कर्मों के भार से जीव इस प्रकार से भारी होरहे हैं जैसे कि—ऋणी पुरुष, ऋण के भार से भारी होता है यद्यपि ऋणी के सिरपर मस्तक में कोई भी भार नहीं दीखता तथापि उसकी आत्मा भार से युक्त होती है उसी प्रकार जीव को कर्मों का भार है ।

इस प्रकार जीव को कर्मों का भार है ।

इस प्रकार से श्रीभगवान् ने ३४ अतिशययुक्त और ३५ वाणी से विभूषित देश २ में धर्मोद्घोषणा करते हुए अनेक जीवों के संशयों का उच्छेदन किया ।

और सर्व प्रकार से अहिंसा धर्म का देश में प्रचार किया लाखों हवन कुंड में जो पशुओं का वध होरहा उसका निषेध किया, करोड़ों पशुओं को अभयदान

मिलगया, क्योंकि-जो लोग दया से पराङ्मुख होरहे थे, उनको दया धर्म में स्थापना करदिया ।

साथ ही आपके प्रति वचनों में न्याय धर्म ऐसे टपकता था जैसे कि-अमृत की वर्षा में कल्पवृक्ष प्रफुल्लित होजाता है ।

एक समय की बात है कि-आप देश में दया धर्म का प्रचार करते हुए-कौशाम्बी नगरी के बाहिर एक बाग में विराजमान होगए-तब वहाँ पर "उदायन" नामी राजा भी व्याख्यान सुनने को आगया और राणी आदि अन्तःपुर भी वहां पहुंच गया, व्याख्यान होने के पश्चात् एक जयन्ती राजकुमारी ने आप से निम्नलिखित प्रश्न किये, और आपने न्यायपूर्वक उनका निम्नलिखितानुसार उत्तर प्रदान किए । जैसे कि—

जयन्ती-हे भगवन् ! भव्य आत्मा स्वभाव से है वा विभाव से ।

भगवन्-हे जयन्ती ! स्वभाव से है विभाव से नहीं है ।

जयन्ती-हे भगवन् ! यदि भव्य आत्मा स्वभाव से है तो क्या सर्व भव्य आत्मा मोक्ष हो जायेंगे ।

भगवन्-हे भाविके ! सर्व भव्य आत्मा मोक्ष प्राप्त नहीं करेंगे क्योंकि—यह अनन्त है जैसे आकाश की श्रेणियें अनन्त हैं उसी प्रकार जीव भी अनन्त हैं जिस प्रकार उन श्रेणियों का अन्त नहीं आता उसी प्रकार जीवों का अन्त भी नहीं है

जयन्ती—हे भगवन् ! अनन्त शब्द का अर्थ क्या है ।

भगवन्—हे जयन्ती ! जिसका अन्त न हो उसे ही अनन्त कहते हैं जब उसका अन्त है तब वह अनन्त नहीं कहा जा सकता । अतएव ! हे जयन्ती ! अनादि संसार में अनादि काल से अनन्त आत्मा निवास करते हैं अनन्त ही होने से उन का अन्त नहीं पाया जाता ।

जयन्ती—हे भगवन् ! जीव बलवान् अच्छे होते हैं वा निर्बल अच्छे होते हैं ।

भगवान्-हे जयन्ती ! बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं बहुत से निर्बल अच्छे होते हैं ।

जयन्ती—हे भगवन् ! यह कथन किस प्रकार से माना जाए कि बहुत से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं और बहुत से निर्बल—

भगवान्–हे जयन्ती ! न्याय-पक्षी, धर्मात्मा, धर्म से जीवन व्यतीत करने वाले, धर्म–के उपदेशक वा सत्यपथ के उपदेशक इस प्रकार के आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं क्योंकि–धर्मात्माओं के बल से अन्याय नहीं होने पाता, जीवों की हिंसा नहीं होती पाप कर्म घट जाता है लोग न्याय पक्ष में वा धर्म पक्ष में आरूढ़ हो जाते हैं अतएव ! धर्मात्मा जन तो बलवान् ही अच्छे होते हैं। किन्तु जो पापात्मा हैं वे निर्बल ही अच्छे होते हैं क्योंकि–जब पापियों का बल निर्बल होगा तब श्रेष्ट कर्म बढ़ जायेंगे किन्तु जब पापी बल पकड़ेंगे तब अन्याय बढ़ जाएगा। पाप बढ़ जाएगा। हिंसा, झूठ, चोरी–मैथुन, और परिग्रह, यह पाचों ही आश्रव बढ़ जाएँगे, अतएव ! पापियों का निर्बल ही होना अच्छा है।

जयंती–हे भगवन् ! जीव सोए हुए अच्छे होते हैं वा जागते हुए ?

भगवान् ! हे जयंती ! बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे हैं।

जयंती ! हे भगवन् ! यह बात किस प्रकार मानी जाए कि—बहुत से आत्मा सोए हुए अच्छे हैं और बहुत से जागते हुए अच्छे हैं।

भगवान् ! हे जयन्ति ! सत्यधारी, न्याय करनेवाले, सर्व जीवों के हितैषी समपक्ष, सर्व जीवों को अपने समान जानने वाले इत्यादि गुण वाले लोग जागते अच्छे होते हैं। पाप कर्मों के करने वाले, सर्व जीवों से वैर करने वाले असत्यधारी, अधर्म स जीवन व्यतीत करने वाले इत्यादि अवगुण वाले और सोए पड़े तो अच्छे हैं क्योंकि उनके सोने से बहुतसी आत्माओं को शान्ति रहती है।

इस प्रकार अनेक प्रकार के प्रश्नों के यथेष्ट उत्तर पाकर जयंती राजकुमारी दीक्षित होकर श्रीचन्दना नामक आर्या के पास रहकर मोक्ष प्राप्त होगई।

श्रीभगवान् ने अपने पवित्र चरणकमलों से इस धरातल को पवित्र किया और अनेक आत्माओं को संसार चक्र से पार किया।

इस प्रकार श्रीभगवान् परोपकार करते हुए अन्तिम चतुर्मास श्रीभगवान् ने अपापापुरी (पावापुर) नगरी

के हस्तीपाल राजा की शुक्रशाला में किया इस चतुर्मास में बहुत विषयों पर उपदेश किये। कार्तिक कृष्णा १५ पंचदशी को रात्रि में १५५ अध्याय कर्मविपाक के और ३६ अध्याय उत्तराध्ययन सूत्र के वर्णन करके श्रीभगवान् निर्वाण होगए।

उसी समय १८ देशों के राजे श्रीभगवान् के पास पौषध करके बैठे हुए थे जब उन्होंने श्रीभगवान् निर्वाण हुए जानलिए! तब उन्होंने रत्नों का द्रव्य उद्योत किया तब ही श्रीभगवान् महावीर स्वामी की स्मृति में "दीपमाला" पर्व स्थापन किया गया जो आज पर्यन्त अव्यवहिच्छिन्नता से चला आता है। श्रीभगवान् ७२ वर्ष पर्यन्त इस धरातल को सुशोभित करते रहे! उन्हों का इन्द्रों वा मनुष्यों ने मृत्यु संस्कार बड़े समारोह के साथ अग्नि द्वारा किया सो हरएक भव्य आत्माओं को योग्य है कि—श्रीभगवान् की शिक्षाओं से अपने जीवन को पवित्र बनाएँ और सबके हितैषी बनें क्योंकि—शास्त्रों में श्रीभगवान् सब जीवों के हित के लिए निम्नलिखित आठ शिक्षाएँ करगए हैं। जैसे कि—

१ जिस शास्त्र को श्रवण नहीं किया उसको श्रवण करना चाहिए ।

२ सुने हुए ज्ञान को विस्मृत न करना चाहिए ।

३ संयम के द्वारा प्राचीन कर्म क्षय करदेने चाहिएं ।

४ नूतन कर्मों का सम्वर करना चाहिए ।

५ जिसका कोई न रहा हो उसकी रक्षा करनी चाहिए—(अनाथों की पालना)

६ नए शिष्यों को शिक्षाओं द्वारा शिक्षित करदेना चाहिये ।

७ रोगियों की घृणा छोड़ के सेवा करनी चाहिये ।

८ यदि परस्पर कलह उत्पन्न होगया हो तो उस कलह का माध्यस्थ भाव अवलम्बन करके और निष्पक्ष होकर मिटादेना चाहिए क्योंकि—कलह में अनेक गुणों की हानी होती है । यश—प्रेम—सुहृद, यह सब कलह से चलेजाते हैं । इन शिक्षाओं द्वारा अपना जीवन पवित्र करना चाहिए ।

बारहवाँ पाठ ।

(श्राविका विषय)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! जैसे जैनमत में श्रावक को धर्माधिकारी बतलाया है वा श्रावक को चारों तीर्थों में एक तीर्थ माना गया है तथा जैसे द्रव्य तीर्थ के स्नान से शारीरिक मल दूर होजाता है उसी प्रकार श्रावक वा श्राविका रूप तीर्थ के संग करने से जीव पापों से छूट जाते हैं ।

जब श्रावक बारह व्रतों का धारी होता है फिर उस की धर्मपत्नी भी बारह व्रत ही धारण करले तब धर्म की साम्यता होने पर उनके दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत होते हैं ।

श्रावक और श्राविकाओं को अन्य द्रव्य तीर्थों की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उनसे बड़े जो और दो तीर्थ हैं वे आनन्द पूर्वक उनकी यात्रा कर सकते हैं जैसे कि—साधु और साध्वी—इनके दर्शनों से

धर्म की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि निर्णय होजाता है और ज्ञान से विज्ञान बढ़जाता है जब विज्ञान होगया तब संयम होता है संयम का फल यही है कि—आश्रव से रहित होजाना, जब आश्रव से रहित होगया तब उसका परिणाम मोक्ष होता है।

मित्रो ! श्राविकाओं को जैन सूत्रों ने धर्म विषय में अधिकार दिये हैं वा श्राविकाओं के लिये गये हैं। अपितु ! सिद्ध हुआ कि—श्रावक और श्राविका का धर्म एक ही होना चाहिये।

धर्म की साम्यता होने पर हर एक कार्य में फिर शान्ति रह सकती है जब धर्म में विषमता होती है तब प्रायः हर एक कार्य में विषमता हो जाती है।

सो श्राविकाओं का योग्य है कि—घर सम्बन्धि काम काम करता हुई यत्न को न छोड़े—जैसे स्त्रियों की सूत्रों में ६४ कलाएं वर्णन की गई हैं उनमें यह भी कला बतलाई गई है कि—जो घर के काम हों उनको भी स्त्री यत्न बिना न करे।

जैसे—चुल्हा, चौका, चक्की, इत्यादि कार्यों में यत्न बिना काम न करना चाहिये। क्योंकि—चुल्हादि की

क्रिया करते समय यदि विवेक न किया जाएगा तब अनेक जीवों का हिंसा होने की संभावना की जाती है तथा चक्की की क्रिया में भी सावधान रहने की अत्यन्त आवश्यकता है यदि विना यत्न काम किया जायेगा तब हिंसा होने की संभावना हो जाती है और साथ ही अपनी रक्षा भी नहीं हो सकती क्योंकि—यदि विना यत्न से काम करते हुए कोई विष वाला जीव चक्की द्वारा पीसा गया तब उस के परमाणुओं से रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिस से वैद्यों वा डाक्टरों के मुंह देखने पड़ते हैं तथा इस समय जो अधिक रोग उत्पन्न हो रहे हैं उसका मूल कारण यही प्रतीत होता है कि—खान, पान, में विवेक नहीं रहा है इसी वास्ते मशीन द्वारा चुन्न पीसा हुआ विवेकी पुरुषों को त्याज्य है क्योंकि—मशीनों में प्रायः यत्न नहीं रह सकता फिर अनर्थ दण्ड का भी पाप अतीव लगता है जो घरों में अपनी चक्की द्वारा काम किया जाता है उस में अनर्थ दण्ड का पाप तो टल ही जाता है परन्तु यत्न भी हो सकता है और वह अन्न भी स्वच्छ होता है तथा स्वच्छता के कारण से रोगों से भी निवृत्ति हो जाती है।

और घर में भी भाव बने रहते हैं इसलिए। स्त्रियों को योग्य है कि—घर के काम बिना यत्न न करें।

जिन घरों में यत्न से काम नहीं किया जाता और प्रमाद बहुत ही छाया हुआ रहता है उन घरों की लक्ष्मी की वृद्धि नहीं हो सकती इस लिए। श्राविकाओं को योग्य है कि—घर के काम बिना यत्न कभी न करें तथा चुल्हा सम्बन्धि काम जैसे बिना देखे लकड़ियें न जलायें, जो गोमय (थापियां वा थापियां) भी जलाना पड़ता है उन्हें भी बिना देखे चुल्हे में न दें क्योंकि—गोमय में बहुत से सूक्ष्म जीव उत्पन्न हो जाते हैं जो गीले ईंधन में बहुत से जीव होते हैं इस लिए इन कार्यों में विशेष यत्न की आवश्यकता है।

और भोजन शाला की छत पर भी वस्त्राच्छादन की अत्यावश्यकता होती है क्योंकि—धूम के छत पर लग जाने से बहुत से जीव उत्पन्न होजाते हैं वा मसी (मषी) छत पर लगी हुई होती है जब वह भोजनादि क्रियायें करते समय नीचे गिर जाती है तो फिर रोग के उत्पन्न करने हारी वा भोजन को बिगाड़ने वाली होती है अत

एव ! सिद्ध हुआ कि–भोजन शाला (मंडप) में अत्यन्त यत्न की आवश्यकता है।

तथा चारपाई वा वस्त्रादि भी विना यत्न से न रखने चाहिये, विना यत्न से इन में भी जीवोत्पत्ति हो जाती है और जो खांड आदि पदार्थ घरों में होते हैं वा घृत तैलादि होते हैं उन के वर्त्तन को विना आच्छादन किये न रखने चाहिये अपितु सावधानी से इन कार्यों के करने मे जीव रक्षा हो सकती है और घर के सामान्न को ठीक रखते हुये, स्वभाव कटु कभी न होना चाहिये– स्वभाव सुन्दर होने से ही हर एक कार्य ठीक रह सकता है–सन्तान रक्षा, पशु सेवा, स्वामी आज्ञा पालन, इत्यादि कार्य श्राविकाओं को विना विवेक न करने चाहिये। कारण कि–पत्नियों का देव शास्त्रकारों ने पति ही बतलाया है जो –स्त्री अपने प्रिय पति की आज्ञा पालन नहीं करती अपितु आज्ञा के अतिरिक्त पति का सामना करती है और असभ्य वर्ताव करती है वह पतिव्रत धर्म से गिरी हुई होती है।

और मर कर भी सुगति में नहीं जाती किन्तु श्राविकाओं

को न बनावे किन्तु आप श्रावक धर्म में प्रवृत्ति करता हुआ उस को सुशिक्षा से अलंकृत करे।

और परस्पर प्रेम सम्बन्धि वार्त्तालाप में धर्म चर्चा भी करते रहें सदैव काल प्रसन्न मुख से परस्पर निरीक्षण करें क्यों कि–जिस घर में सदैव कलह ही रहता है उस घर की लक्ष्मी चली जाती है,

इस लिए ! धर्म पूर्वक प्रेम पालन के लिए जो कुछ स्त्री की न्याय पूर्वक मांग होती है यदि उसको पालन (पूर्ण) न किया जाए तब अनुचित वर्ताव होने की शंका की जाती है सो उसकी मांग पूरी करने से उसका चित्त अनुचित्त वर्ताव से दूर करना ही है परन्तु स्त्रियों को भी उचित है कि–अपने घर की व्यवस्था ठीक देख कर पदार्थों की याच्ना करनी चाहिए।

वह भी एक सकोमल और मृदु वाक्यों से करनी चाहिए।

क्योंकि–कठिन वाक्यों के परस्पर प्रयोग करने से प्रेम टूट जाता है असभ्य वर्ताव बढ़ जाता है॥

परलोक की यात्रा करनी है वहां पर अपने किये हुये ही कर्म काम आते हैं इस लिये ! परलोक के लिये तीनों की परीक्षा अवश्य ही करनी चाहिए जैसे कि—देव, गुरु और धर्म।

सारा ससार विश्वास पर काम कर रहा है लाखों वा करोडों रुपइयों का व्यापार भी विश्वास पर ही चल रहा है—कन्या दान भी विश्वास पर ही लोग करते हैं।

इसी प्रकार जब परीक्षा द्वारा "देव" सिद्ध हो जाए तब उस पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

जैसे कि—जिस देव के पास स्त्री है वह कामी अवश्य है क्योंकि—स्त्री का पास रखना ही उस का कामी पना सिद्ध कर रहा है, तथा जिस देव के पास शस्त्र हैं वह भी उस का देव पना नहीं सिद्ध कर सकते क्योंकि—शस्त्र वही रखता है जिस को किसी शत्रु का भय हो तथा जिस देव के हाथ में जप माला है वह भी देव नहीं होता है, जप माला वही रखता है जिस ने किसी का जाप करना हो तथा स्मृति न रहती हो जब वह स्वयं ही देव है तब वह किस देव का जप कर रहा है क्यों—

आदि के न रखने से सर्वज्ञता का व्यवच्छेद हो जाता है और कमंडलु आदि के रखने से अपवित्रता सिद्ध होती है सिंह आदि पशुओं की सवारी करने से दयालु पना नहीं रहता इत्यादि चिन्हों द्वारा देव के लक्षण सघटित नहीं होते हैं इसी लिये उन्हें देव नहीं माना जाता।

जो गुरु हो कर कनक कामनी के त्यागी नहीं हैं अपितु विषया नन्दि होरहे हैं पुर जोरू जमीन के झगड़े में फंसे हुए हैं और भांग-चरस, हुक्का, तमाखु अफीम, गांजा, इत्यादि व्यसनों में फंसे हुए हैं फिर इन्हीं के कारण से वे जूआ—मांस—मदिरा-परस्त्री-वेश्यादि के गामी बन जाते हैं।

राम द्वार में गृहस्थों की तरह बन के भी न्याय (फैसले) होते हैं अतएव ! वे गुरु पद के योग्य नहीं हैं, किन्तु उन कारणों से बहुत से शुद्ध गृहस्थ अच्छे हैं जो व्यसनों से बचते हैं।

फिर वेह हर तरह की सवारियों में भी चढ़ जाते हैं— लोगों के आ मंत्रणों का स्वीकार करते हैं भण्डारे कराते हैं-भंडारों के नाम पर हजारों रुपये लोगों से एकठे

करते हैं–सो यह कृत्य साधु वृत्ति से बाहर हैं इसलिये ऐसे पुरुष भी गुरु होने के योग्य नहीं हैं।

जिस धर्म में हिंसा की प्रधानता है और असत्य, मैथुन आदि क्रियाएं की जाती हैं देवों के नाम पर पशु वध होते हैं वह धर्म भी मानने योग्य नहीं है क्योंकि–जैसे उन के देव हैं वैसे ही उन देवों के उपासक हैं जैसे–कवि ने कहा है कि—

करभाणां विवाहेतु रासभास्तत्र गायकाः
परस्परं प्रशंसंति अहोरूप महो ध्वनिः १

अर्थ–ऊंटों के विवाह में गधे बन गये गाने वाले, फिर वह परस्पर प्रशंसा करते हैं कि–आश्चर्य है ऐसे रूप पर और वह कहते हैं आश्चर्य है ऐसे गाने वालों पर क्योंकि–जैसे वर का रूप है वैसे ही गाने वालों का मधुर स्वर है।

उसी प्रकार, जैसे हिंसक देव हैं उसी प्रकार के हिंसक उन के उपासक हैं अतएव ! सिद्ध हुआ कि–जिस धर्म में व्यभिचार ही व्यभिचार पाया जाता है वह धर्म

भी विद्वानों के उपादेय नहीं है, मिथ्याधुजनों को ऐसे धर्मों से भी पृथक् रहना चाहिये।

मुमुक्षु पुरुषों को चाहिये कि—देव उन को मानें जो १८ दोषों से रहित हैं, जीवन्मुक्त और सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं वाग मुद्रा में भी वैसे आते हैं—सर्व जीवों को निर्भय करने वाले हैं मोक्षी मार्ग के देशक हैं, ३४ अतिशय और ३५ वाणी के धारक हैं जो ऊपर अन्य देवों के शस्त्रादि चिन्ह वर्णन किए गए हैं उन चिन्हों में से कोई भी चिन्ह उन में नहीं है ऐसे श्री, अर्हन् प्रभु देव मानने चाहिये। और गुरु वही हो सकते हैं जो शास्त्रानुसार अपना जीवन व्यतीत करने वाले हैं, सत्यवक्ता और सर्व जीवों के हितैषी हैं भिक्षा वृत्ति के द्वारा वह अपना जीवन व्यतीत करते हैं जैसे भ्रमर की वृत्ति होती है उसी प्रकार जिनके भोजन की वृत्ति है—हर एक प्रकार से वह त्यागी हैं कायोत्सर्ग में सदा लगे रहते हैं विवेक जिन का सहोदर है जैसे सहोदर से प्रेम होता है उसी प्रकार विवेक से जिन का प्रेम है।

पांच महाव्रत षड्कायिक धर्म इत्यादि के जो पालने वाले हैं वही गुरु हो सकते हैं।

धर्म वही होना चाहिये—जिस में जीव दया हो। क्योंकि—जिस धर्म में जीव दया नहीं है वह धर्म ही क्या है कारण कि—जीव रक्षा ही धर्म का मुख्य अङ्ग है इसी से अन्य गुणों की प्राप्ति हो सकती है।

मित्रो! जैन धर्म का महत्व इसी बात का है कि—इस धर्म में अहिंसा धर्म का असीम प्रचार किया। अनन्त आत्माओं के प्राण वचाये हिंसा को दूर किया

यद्यपि—अन्यमतावलम्बी लोगों ने भी "अहिंसा परमो धर्म" इस महा वाक्य का अति प्रचार किया किंतु वह प्रचार स्वार्थ कोटी में रह गया क्योंकि—उन लोगों ने बलि, यज्ञ, देवादि के वास्ते अहिंसा को विहीत मान लिया इसी कारण से वेह लाग इस महा वाक्य का पालन न कर सके।

तथा अपने स्वार्थ के वास्ते, वा शरीरादि रक्षा वास्ते भी उन लोगों ने हिंसा विहीत मान लिया।

तथा—एकेन्द्रियादि कार्यों में कतिपय जनों ने जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की जैसे—मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु,

और वनस्पति काय में जैन शास्त्रों ने संख्यात, असंख्यात, वा अनन्त आत्मा स्वीकार किये हैं किन्तु अन्य उन लोगों ने उन में जीव सत्ता ही नहीं स्वीकार की हो अतः फिर उन की रक्षा में वे कटिबद्ध कैसे खड़े हो जाएं।

अतएव! जैन शास्त्रों ने एकेन्द्रियादि से लेकर पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जीवों पर अहिंसा धर्म का प्रचार किया, सो धर्म वही हो सकता है जो अहिंसा का सर्व प्रकार से पालन करता हो।

और जीव रक्षा धर्म में ही, दान, शील, तप, और भावना रूप धर्म प्रवेश हो सकते हैं अन्य नहीं।

क्योंकि—अहिंसा धर्म का पालते हुये ही दान, दिया जा सकता है तप किया जाता है, शील पालन होता है, भावना, द्वारा तीनों उक्त धर्मों की सफलता की जाती है।

जब दान, शील तप, भी कर लिया किन्तु भावना उस में न धारण की गई तो वे तीनों ही धर्म सफल नहीं हो सकते हैं अतएव! भावना द्वारा कार्यों की सफलता करनी चाहिये।

वृद्धपुरुषो—जैन धर्म ने अहिंसा धर्म का सेतु रामेश्वर से लेकर विंध्याचल पर्वत पर्यन्त ना प्रचार किया ही था, किन्तु अन्य देशों में भी अहिंसा धर्म का नाद बजाया समय की विचित्रता है कि—अब यह पवित्र धर्म का प्रचार स्वल्प होने के कारण से केवल—गुजरात (गुजर) मारवाड़, मालवा, कच्छ, पंजाब, आदि देशों में ही यह धर्म रह गया है किन्तु इस धर्म के अमूल्य सिद्धान्त विद्वानों के स्वल्प होने के कारण से छिपे पड़े हुये हैं।

विद्वान् वर्ग को योग्य है कि—सब के हितैषी भाव को अवलम्बन करके इस पवित्र जैन धर्म के अहिंसा धर्म का प्रचार करना चाहिये जिस के द्वारा अनंत आत्माओं के प्राणों की रक्षा हो जाये। परन्तु यह प्रचार तब हो सकता है जब परस्पर सम्य (प्रेम) हों—जहां प्रेम भाव रहता है वहां पर हर एक प्रकार की सम्पदा मिल जाती हैं जैसे कि—

किसी नगर में एक शेठ रहता था वे बड़ा लक्ष्मी पात्र था एक समय की बात है कि—वह रात्रि के समय सोया पड़ा था उसको लक्ष्मी देवी ने दर्शन देकर कहा कि—

सेठ जी मैंने बहुत चिरकाल पर्यन्त आपके घर में निवास किया किन्तु अब मैं जाती हूं, परन्तु आप एक सुपात्र पुरुष हैं मेरे से कोई वर मांग लो मुझे मत थामना क्योंकि मैं अब रहना नहीं चाहती, तब सेठ जी ने लक्ष्मी देवी से विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि हे मातः ! मैं कल को अपने परिवार की सम्मति के अनुसार आप से वर विषय याचना करूंगा, प्रातः काल होते ही सेठ जी ने अपने परिवार से सम्मति ली, किन्तु उनकी सम्मतियों से सेठ जी की सन्तुष्टी नहीं हुई तब सेठ जी की छोटी कन्या जो पाठशाला में पढ़ती थी जब उस से पूछा तब उसने विनय पूर्वक सेठ जी के चरणों में निवेदन किया कि—पिता जी ! आप लक्ष्मी माता से सख्य (प्रेम) का वर मांगो जिस से उस के जाने के पश्चात् घर में फूट और कलह उत्पन्न हो जावेगा, वह न हो, सेठ जी ने इस बात को स्वीकार कर लिया, फिर रात्री के समय देवी ने दर्शन दिये तो फिर सेठ जी ने यही प्रेम रूप वर मांगा तब देवी ने उत्तर में कहा कि—हे सेठ जी ! अब तुम परस्पर प्रेम रखने की भावना करते हो तो फिर मैंने कहां जाना है क्योंकि—जहां 'प्रेम'

वहां ही मैं–फिर लक्ष्मी शेठ जी के घर में स्थिर हो कर रहने लगी इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि–जहां प्रेम होता है वहां सब कुछ होजाता है इस लिये ! देव, गुरु, और धर्म की पूर्ण प्रकार से परीक्षा करके फिर इस के प्रचार में कटि बध हो जाना चाहिये । जब अहिंसा धर्म का सर्वत्र प्रचार किया जाएगा तब सदा चार का प्रचार भी साथ ही हो जाएगा ।

जो कि–सदा चार सत् पुरुषों का जीवन है ।
मोक्ष के अक्षय सुख के देने वाला है ।
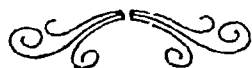
चौदहवाँ पाठ ।

(श्रीपूज्य अमरसिंह जी महाराज का जीवन चरित्)

प्रिय सुज्ञपुरुषो ! एक महर्षि की जीवनी से अनेक आत्माओं को लाभ पहुंचता है फिर जनता उसीका अनुकरण करने लगजाती है ।

त्यागी की जीवनी एक स्वर्गीय सोपान के समान बनजाती है परन्तु जीवनी किसी अंथ को अवश्य रखती हो—

यदि जीवनी सत्यपरिपूर्ण होवेगी तब वह फिर जगत् में पूजनीय बनजाएगी क्योंकि—जीवनी के पढ़न से पाठकों का तीन पदार्थों का ज्ञान होता है, उस समय संसार की क्या गति थी त्यागी अपना जीवन निर्वाह किस प्रकार करते थे, उस महर्षि ने किस उद्देश्य के लिए अनेक कष्टों का सामना किया इसना ही नहीं किन्तु उन कष्टों का शान्ति पूर्वक सहन किया, अन्त में किस प्रकार वह सफल मनोरथ हुए।

आज आप एक ऐसे महर्षि के पवित्र जीवन को अवलोकन करेंगे कि—जिन्होंने पंजाब देश में किस प्रकार से जैन धर्मोद्योत किया और अपना अमूल्य जीवन संघ सेवा में ही लगा दिया।

वह आचार्य श्री पूज्य अमर सिंह जी महाराज हैं। आप का जन्म पंजाब देश के सुप्रसिद्ध अमृतसर

आप के पिता जी जवाहरात की दुकान करते थे, उस समय पंजाब देश में महाराजा "रणजीत सिंह" जी के राज्य तेज से बहुतसी जातियों में सिंह नाम की प्रथा चली हुई थी। आप बाल्यावस्था के अति क्रम हो जाने पर अति निपुण हो गये विद्या में भी अति प्रवीण हुये। नामक शहर में १८६२ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन लाला बुद्ध सिंह ओसवाल (भावडे) बत्तड गोत्री की धर्म पत्नी श्री मती कर्मों देवी की कुक्षि मे हुआ था।

लाला मोहर सिंह, और लाला मेहर चन्द्र, यह दोनों आप के बड़े भाई थे आप का परस्पर प्रेम भाव उन्हों के साथ अधिक था, जब आप यौवनावस्था में आये तब आपको पूर्व कर्मों के क्षयो पशम भाव से वैराग्य उत्पन्न हो गया, सदैव काल यही भाव आप अपने मन में भावने लगे कि—मैं जैन दीक्षा लेकर धर्म का प्रचार करूं जो लोग अन्ध श्रद्धा में जा रहे है उन को सुपथ में लाऊं।

जब आप के भाव अति उत्कट हो गये तब आप के माता पिता ने आपके इस प्रकार के भावों को जान कर

पूर्वक उनको दे दिया क्योंकि—आपका परिवार बहुत बढ़ चुका था—तब आप दीक्षा के लिए देहली में श्रीराम-लाल जी महाराज के चरणों में उपस्थित होगए किन्तु रामरत्न जी और जयन्तीदास जी यह भी दोनों आपके साथ ही दीक्षा के लिए तय्यार हुए तब आपको श्रीगुरु महाराज ने संयम वृत्ति की दुष्करता सिद्ध करके दिख-लाई किन्तु आपने संयम वृत्ति के सर्व कष्टों को सहन करना स्वीकार करलिया क्योंकि—आप पहिले ही संसार से विरक्त होरहे थे, और परोपकार करने के भाव उत्कटता में आए हुए थे। तब देहली निवासी लोगों ने दीक्षा महोत्सव रचदिया तब आपने १८६८ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन उन दोनो के साथ दीक्षा धारण की, गुरुजी के साथ ही प्रथम चतुर्मास दिल्ली में किया।

काल की बड़ी विचित्र गति है यह किसी के भी समय को नहीं देखता अकस्मात् श्रीमान् पण्डित—श्री रामलाल जी महाराज का दीक्षा के षट्मास के पश्चात् स्वर्गवास होगया, तब आपने शान्ति पूर्वक अपने गुरु भाइयों के साथ देश में विचरना आरंभ किया, और

आपके विवाह की रचना रचदिया थी कि आपको बिना इच्छा माता पिता की आज्ञा का पालन करना पड़ा, अर्थात् उन्हों ने आप का शियालकोट में लाला हीरा लाल (सेठ वाले) ओसवाल की धर्म पत्नी श्री मती आत्मा देवी जी की पुत्री श्री मती अमाला देवी के साथ पाणी ग्रहण करवा दिया ।

जब आप का विवाह संस्कार भी हो गया परन्तु धर्म में आपके भाव और भी बढ़ते रहे किन्तु भोगावली कर्मों के प्रभाव से आप को संसार में ही कुछ समय तक रहना पड़ा आप जौहरियों में एक बड़े प्रसिद्ध जौहरी थे, आप के दो पुत्रियें उत्पन्न हुईं उन्हों का आप ने विवाह संस्कार किया फिर आपके भाव संयम में प्रविष्ट हो गये ।

तब उस समय पंजाब देश में श्री रामलाल जी महाराज धर्म प्रचार कर रहे थे आप के भाव उनके पास दीक्षा लेने का हो गये । माता पिता का स्वर्ग वास तो हो ही चुका था, तब आप ने अपनी दुकान पर नौकर गुमास्ते बिठलाए, और आप स्वयं निर्मम

पूर्वक उनको दे दिया क्योंकि–आपका परिवार बहुत बढ़ चुका था–तब आप दीक्षा के लिए देहली में श्रीराम-लाल जी महाराज के चरणों में उपस्थित होगए किन्तु रामरत्न जी और जयन्तीदास जी यह भी दोनों आपके साथ ही दीक्षा के लिए तय्यार हुए तब आपको श्रीगुरु महाराज ने संयम वृत्ति की दुष्करता सिद्ध करके दिखलाई किन्तु आपने सयम वृत्ति के सर्व कष्टों को सहन करना स्वीकार करलिया क्योंकि–आप पहिले ही ससार से विरक्त होरहे थे, और परोपकार करने के भाव उत्कटता में आए हुए थे। तब देहली निवासी लोगों ने दीक्षा महोत्सव रचदिया तब आपने १८६८ वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन उन दोनो के साथ दीक्षा धारण की, गुरुजी के साथ ही प्रथम चतुर्मास दिल्ली में किया।

काल की बड़ी विचित्र गति है यह किसी के भी समय को नहीं देखता अकस्मात् श्रीमान् पण्डित–श्री रामलाल जी महाराज का दीक्षा के षट्मास के पश्चात् स्वर्गवास होगया, तब आपने शान्ति पूर्वक अपने गुरु भाइयों के साथ देश में विचरना आरंभ किया. और

साथ ही विद्याध्ययन करते रहे—जब आपने सुशाध्ययन कर लिया तब आपके पास अनेक जन दीक्षित होने, सम्वत् १९१३ विक्रमाब्द दिल्ली में आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ—फिर श्रावक लोग अपने समाचारपत्रों में श्री पूज्य पाद पूज्य अमरसिंह जी महाराज इस प्रकार लिखने लग गए। पूज्य महाराज जी फिर देश विदेश में अपनी शिष्य मण्डली के साथ होते हुए धर्मोपदेश करने लगे,

मारवाड़ मालवा, आदि देशों में भी आपने धर्म का अत्यन्त प्रचार किया और उस समय में पंजाब देश में बहुत से लोग जैन सूत्रों का पढ़ना गृहस्थों के लिए बन्द कर रहे थे आप ने जैन सूत्रों के प्रमाणों से योग्यता नुसार श्रावक लोगों का शास्त्राधिकारी सिद्ध किया,

आप की दिव्य मूर्ति ऐसी प्रिय थी कि—जो आप के दर्शन करता था वह मुग्ध हो जाता था। आप की व्याख्यान शैली ऐसी उच्च कोटी की थी कि जिससे प्रत्येक जन सुनकर हर्ष प्रगट करता था, आपने अपने चरण कमलों से प्रायः पंजाब देश को अधिक पावन किया,

आप ऐसे ऊच कोटी के विद्वान् वा आचार्य होते हुए भी आप तपस्वी भी थे एक वार आप ने ३३ व्रत (उपवास) लगातार किए पानी के शिवा (सिवा) आप ने और कुछ भी नहीं खान पान किया, ८ वा १५ दिन पर्यन्त तो आपने कई वार तप (उपवास) किये, ।

सहन शक्ति आपकी ऐसी असीम थी कि—विपक्षियों की ओरसे आप को अनेक प्रकार के कष्ट हुए उनका हर्ष पूर्वक आप ने सहन किए ।

अनेक सुयोग्य पुरुषों ने आप के पास दीक्षाएँ धारण की—जो आप के अमृतमय व्याख्यान को सुन लेता था वह एक वार तो वैराग्य से भीग जाता था, ग्राम २ वा नगर २ में आप ने फिरकर जैन ध्वजा फहराई और लोगों को सुपथ में आरूढ़ किया, अपनी गच्छ मर्यादा के कई नियम भी आपने नियत किए, जैन धर्म पर आप की असीम श्रद्धा थी—जैसे कि—

उन दिनों में आपके हाथों के दीक्षित किए हुए श्री श्री श्री १०८ स्वामी जीवनरामजी महाराज के शिष्य आत्मा राम जी की श्रद्धा मूर्त्ति पूजा की होजाने के

कारण से इन्हों ने आपके बारह शिष्य कहलाए और वह आप के साथ प्रेम से कृपा करते रहे पश्चिम आप ने इन्हों को अपने गच्छ से पृथक् कर दिया थे-आत्मा राम जी के साथ मिल कर तप गच्छ में चले गए।

इन्होंने आपको कई प्रकार के अनुकूल वा प्रतिकूल परीषह भी दिए परन्तु आपकी ऐसी सहन शक्ति थी कि-बाकी अन्त में हतोत्साह होगए, आपकी जय विजय सर्वत्र होतीरही आपके बारह शिष्य हुए जिन्होंने देश देशान्तरों में फिरकर जैनधर्म का प्रचार किया, उनके शुभ नाम यह हैं जैसे कि—

श्री स्वामी मुसद्दीरायजी महाराज १ श्री स्वामी पन्नालालजी म० २ श्रीस्वामी विलासरायजी महाराज ३ श्रीस्वामी रायचन्दजी महाराज ४ श्री स्वामी सुखदेवजी महाराज ५ श्री स्वामी मोतीरामजी ६ श्रीस्वामी मोहन-लाल जी महाराज ७ श्री स्वामी रामचन्द्र जी महाराज ८ श्री स्वामी सेवाराम जी महाराज ९ श्री सुवर्णचन्द्र जी महाराज १० श्री स्वामी बालक राम जी महाराज ११ श्री स्वामी राधाकृष्ण जी महाराज।१२।

इस प्रकार आप और आप के सुयोग्य शिष्य धर्म प्रचार करते हुए आप ने १९३७ का चतुर्मास अमृतसर में किया, चतुर्मास के पश्चात् जंघाबल क्षीण होजाने के कारण से श्रावक समुदाय की विज्ञप्ति अत्यन्त होने पर आप ने फिर विहार नहीं किया आप के विराजमान होने से अमृतसर में अनेक धार्मिक कार्य होने लगे किन्तु काल की ऐसी विचित्र गति है कि—यह महात्मा वा सामान्यात्मा को एक ही दृष्टि से देखता है किसी ना किसी निमित्त को सन्मुख रख कर शीघ्र ही प्राणी को आ घेरता है, १९३८ आषाढ़ कृष्णा १५ का आपने उपवास किया परन्तु उस उपवास का पारणा ठीक न हुआ, तब अपने अपने ज्ञान बल से आयु को निकट आया जान कर जैन सूत्रानुसार आलोचनादि क्रियाएँ करके सब जीवों से क्षमापन (खमावना) आदि करके दिनके तीन बजे के अनुमान में श्री संघ के सन्मुख शास्त्रविधि के अनुसार अनशन व्रत करलिया फिर परम सुन्दर भावों के साथ मुख से अर्हन् अर्हन् का जाप करते हुए आषाढ़ शुक्ला द्वितीया दिन के १ बजे के अनुमान आप का स्वर्गवास होगया ।

तब श्रावक संघ ने तारों द्वारा आपका हृदय विदीर्ण करने वाला शोक समाचार नगर २ देदिया जिससे अमृतसर में बहुतसा श्रावक वा श्राविका संघ एकत्र होगया तब आपके शरीर का बड़े समारोह के साथ चन्दन द्वारा अग्नि संस्कार किया गया आपके विमान पर लोगों ने ६४ दुशाले पाए थे ।

अब पंजाब देश में आपके श्रावकों ने आपके नाम पर अनेक संस्थाएं स्थापन की हुई हैं जैसे—अमर जैन पुस्तकालय, अमर जैन छात्रालय (बोर्डिंग) इत्यादि— २ पंजाब देश में प्रायः आपके शिष्यों के शिष्य संयम धर्मप्रचार कररहे हैं, आपके गच्छ का नाम लाहोरी गच्छ वा पंजाबी गच्छ, अन्य देशों में सुप्रसिद्ध होरहा है ।

पाठक जनों को आपके पवित्र जीवन से अनेक प्रकार की शिक्षाएं लेनी चाहिए ।

आपने जिस प्रकार जैनधर्म का दृढ़ता पूर्वक प्रचार किया था इस बात का अनुकरण प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए ।

पन्द्रवां पाठ।

(धन्ना शेठ की कथा)

प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! प्राचीन समय में एक राज गृह नगर वसता था उस के बाहिर एक सुभूमि भाग नाम वाला बाग था जो अति मनोहर था उस नगर में एक धन्ना शेठ बसता था जो बड़ा धनवान् था उस की भद्रा नाम वाली धर्म पत्नी थी, धन्ना शेठ के चार पुत्र थे उन के नाम शेठ जी ने इस प्रकार स्थापन किये थे जैसेकि—धन पाल १ धन देव २ धन गोप ३ और धन रक्षित ४ उन चारों पुत्रों की चारों वधुएँ थी—जैसेकि—उज्झिया १ भोग वर्त्तिका २ रक्षिका ३ और रोहिणी ४।

एक समय की बात है कि—धन्ना शेठ आधी रात के समय अपने कुटम्ब की विचारणा कर रहे थे साथ ही इस बात को भी विचार करने लग गये, कि—मैं इस समय इस नगर में बड़ा माननीय शेठ हूं, मेरी सर्व प्रकार से उन्नति हो रही है किन्तु मेरे विदेश जाने पर वा-रुग्णावस्था के आने पर तथा मृत्यु के प्राप्त होने पर मेरे

पीछे मेरे घर के काम काज के चलाने वाला कौन होगा इस बात की परीक्षा करनी चाहिये।

ऐसा विचार करते हुए उन्हों ने जाना कि सुप्रभ तो सुयोग्य है यह भली प्रकार काम चलाने लगेंगे परन्तु घर सम्बन्धी उन की स्त्रियों की जांच करनी चाहिये कि वह घर के काम को किस योग्यता से चला सकती हैं तब सेठ जी ने प्रातः काल होते ही अपने सुपुत्रों को बुलाया और उन से कहा कि हे पुत्रो ! तुम तो हर प्रकार से गृहस्थ सम्बन्धी काम करने के योग्य हो मैं तुम से संतुष्ट हूं परन्तु मेरी इच्छा है कि अपने घर की स्त्रियों की परीक्षा लूं तुम उन को बुलाओ तब उन्हों ने अपनी अपनी स्त्री को अपने पिता के सम्मुख शिक्षा और परीक्षा के लिये उपस्थित किया जिस पर सेठ जी ने अपनी चारों बहुओं को पांच २ धान्य दे दिये और उन से कहा कि—हे पुत्रियो ! यह पांच धान्य मैंने तुम को दिये हैं तुम ने इन की रक्षा करनी अपितु जब मैं तुम्हारे से मांगूंगा तब तुम ने यही धान्य मुझे दे देने इस प्रकार की शिक्षा अपनी चारों बहुओं को कर विसर्जन कर दिया।

जब पहिली वधु ने शेठ जी के हाथों से पांच धान्यों को ले लिया और बाहिर आने पर उस ने विचार किया कि—शेठ जो वृद्ध हैं न जाने इन के कैसे २ संकल्प-उत्पन्न होते रहते हैं क्या हमारे घर में धान्यों की कमी है। जिस समय शेठ जी मेरे से धान्य मांगेंगे तब मैं अपने कोठों से निकाल कर पांच ही धान्य शेठ जी को दे दूंगी फिर उस ने ऐसा विचार करके उन पांचों धान्यों को वहां ही गेर दिया।

जो दूसरी वधु को पांच धान्य दिये थे उस ने भी पहिली की तरह उन पर विचार किया, किन्तु वह धान्य गेरे तो नहीं अपितु छील कर खा लिये।

तीसरी वधु ने सोचा कि जब इन धान्यों के वास्ते इस प्रकार हमें शेठ जी ने बुला कर दिये हैं तो इस से सिद्ध होता है कि—इस में कोई न कोई कारण अवश्य है इस लिये इन की रक्षा करनी चाहिये। तब उस ने अपने रत्नों की पेटी में उन पांचों धान्यों को रख दिया इतना ही नहीं किन्तु उन की दोनों समय रक्षा करने लग गई।

जब चौथी वधु ने पांच धान्य के लिये तब उस ने भी दासरी की तरह विचार किया, किन्तु उन धान्यों को अपने कुल घर के पुरुषों को बुला कर यह कहा कि—हे प्रिय ! इन पांच धान्यों को तुम ले जाओ और छोटासा एक क्यारा बना कर विधि पूर्वक वर्षा ऋतु के आने पर इनको बीज दो, फिर यथा विधि क्रियाएं करते जाओ जब तक मैं तुम्हारे से धान्य न मांगलूं—तब तक इस क्रम से धान्य-म धान्य होते जाएं वे सब बीजते जाना ।

दास पुरुषों ने इस आज्ञा को सुनकर हर्ष प्रकट किया फिर वे उसी प्रकार पांच वर्ष पर्यन्त करते गए ।

पांचवें वर्ष उन पांचों धान्यों की वृद्धि होती गई धान्यों के कोठे भर गए । वे दास पुरुष प्रतिवर्ष सर्व समाचार श्रीमती रोहिणी देवी को देते रहे ।

जब पांच वर्ष व्यतीत होगए—तब अकस्मात् श्रेष्ठी रात्री के समय अपने भवन में सोए पड़े थे प्रातःकाल के समय उनकी नींद खुलगई तब उनके मन में यह भाव उत्पन्न हुए कि—मैंने गत पांच वर्ष में अपनी वधुओं की परीक्षा के वास्ते उनको पांच २ धान्य दिए थे, अब देखें

उन्होंने पांच धान्यों से क्या लाभ उठाया। उन मे वृद्धि की या नहीं-तब प्रातःकाल होतेही शेठजी ने फिर एक बड़ा विशाल भोजन मंडप तय्यार करवाया उसमें नाना प्रकार के भोजन तय्यार करवाए गए।

ताम्बूलादि पदार्थों का भी संग्रह किया गया फिर शेठजी ने अपनी ज्ञातिवाले पुरुषों को वा अपनी वधुओं के सम्बन्धि पुरुषों को विधिपूर्वक आमंत्रित किया जब भोजनशाला में सर्व स्वजनवर्ग इकठ्ठा होगया तब उनको भोजन दियागया सत्कार करने के पश्चात् उनके सामने अपनी चारों वधुओं को बुलाया गया।

फिर शेठ जी ने पहली वधु से पांच धान्य मांगे तब बड़ी वधु ने अपने धान्यों के कोठों से पांच धान्य लाकर शेठ जी के हाथ में रख दिये तब शेठ जी ने उसे शपथ दे कर कहा कि-तुम्हें अमुक शपथ है कि-क्या ये वही धान्य हैं। तब वधु ने कहा कि-हे पिता जी! यह धान्य वह तो नहीं हैं किन्तु मैंने अपने धान्य के कोठों में से लाकर धान्य दिये हैं। तब शेठ जी ने उस वधु को विशेष सत्कार तो नहीं दिया और नहीं कुछ कहा परन्तु

उस के सत्य बोलने की प्रशंसा करके चुप हो रहे और उस को बैठने की आज्ञा दी, परन्तु शेठ जी ने दूसरी बधु को बुलाया उस से भी वही धान्य मांगे उस ने भी पहली की तरह सब कुछ कह दिया तब शेठ जी ने उस को भी बैठने की आज्ञा दी, उस के पश्चात् तीसरी बधु को आमंत्रित किया गया उसने आकर सर्व वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कह दिया कि—ये दाने, कारण समझ कर दोनों समय इन धान्यों की रक्षा करती रही तब शेठ जी ने तीसरी बधु का सत्कार करके अपने पास ही उसे भी बैठा लिया ।

फिर शेठ जी ने चौथी बधु को बुलाया उस से भी वही धान्य मांग लिये गये उस ने सब के सामने यह कहा कि—पिता जी ! उन धान्यों के लाने के लिये ! मुझे शकट मिलने चाहिये तब शेठ जी ने कहा कि—हे पुत्रि ! यह कैसे ! तब उस ने जिस प्रकार धान्य लिये थे । और उन को बोया गया था । पांच वर्ष में उन की खेती वृद्धि हुई इत्यादि वृत्तान्त को सुन कर शेठ जी हर्षित हुए और चौथी बधु का बहुत ही सत्कार

देते हुये उस को अत्यन्त प्रशंसा की और उस को पूर्ण आदर दिया ।

तब शेठ जी ने उन चारों वधुओं की परीक्षा लेली, तब लोगों के सामने यह कहा कि–देखो ! मेरी पहली पुत्र वधु ने मेरे दिये पांचों धान्यों को गेर दिया, इस लिये ! मैं अपने घर की शुद्धि करने के काम में नियुक्त करता हूं । जो घर में रज, मल, आदि पदार्थ हों वह उन को घर से बाहिर गेरती रहे,,

दूसरी पुत्र वधु को मैं भोजन शाला में नियुक्त करता हूं क्योंकि–इसने मेरे दिये हुये धान्य खा लिये है सो मै खाने पकानेके काम में स्थापन करता हूं ।

तीसरी वधु ने मेरे दिये हुये पांचों धान्यों की सावधानता पूर्वक रक्षा की है-इस-लिये ! इसको मैं कोशाधिपत्नी बनाता हू । जो मेरे घर में जवाहरात आदि पदार्थ हैं उन की कुंची इस के पास रहेगी ।

चौथी पुत्र वधु ने मेरे दिये हुये पांचों धान्यों की

रक्खि की है इस लिये ! मैं इस को सब कार्यों में मुख्य मान्य और हरएक कार्य में यथार्थ मूल स्थापन करता हूं।

इस प्रकार सेठ जी ने भाषण करके सभा विसर्जन कर दी। हे बालको इस दृष्टान्त से पूर्व समय का कैसा यथार्थ मूल न्याय सिद्ध होता है, और तुम को शिक्षा मिलती है कि-पूर्व समय की स्त्रियां तक कदापि झूठ का कथन न करती थीं तो तुम को योग्य है कि तुम मर्द हो कर कभी झूठ न बोलो और अपनी माता पिता के आज्ञाकारी बनो व बुद्धि को निर्मल करते हुवे विचार वान होने का पुरुषार्थ करो और अपनी स्त्रियों व बाल बच्चों को बुद्धिमता बनाओ यही इस कहानी का सार है—

सोलहवां पाठ।

(जैन धर्म)

जैन धर्म एक प्राचीन धर्म है हिन्दुस्थान के बड़े बड़े शहरों (नगरों) बम्बई कलकत्ता में जैनियों की बहुत २ बस्ति है गुजरात काठियावाड़ मालवा मेवाड़ दक्षिण

मारवाड़ मदरास पञ्जाब आदि में जैन लोग बहुत से बसते हैं जैन जाति विशेष करके व्यापार करने वाली जाति है यही कारण है कि जैन जाति में विद्या की न्यूनता है और इस न्यूनता के होने से जैन धर्म का प्रचार वर्तमान समय में इस प्रकार नहीं जैसा कि होना चाहिये अपितु फिर भी जैन लोगों की संख्या देशों में १०—११ लाख गणना की जाति है जैन धर्म की तीन बड़ी शाखाएं हैं "श्वेताम्बर स्थानक वासी" दिगम्बर" श्वेताम्बर-पुजेरे' या मन्दिर मार्गी" परन्तु इन में सब से अधिक संख्या श्वेताम्बर स्थानक वासियों की ही है दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानक वासी इन में परस्पर भेद तो थोड़ा सा ही है परन्तु विशेष भेद इस बात का है कि श्वेताम्बर स्थानक वासी मूर्ति का पूजन नहीं मानते और अन्य मानते हैं जैन धर्म वालों के बड़े २ प्राचीन हिन्दी ग्रन्थ-वाली प्राकृत संस्कृत मागधी आदि भाषाओं की पुस्तकों के भंडार हैं जो जैसलमेर आदि स्थानों में हैं इन की बहुत सी पुस्तकें हस्त लिखित होने के कारण बड़े २ पुराने पुस्तकालयों और भंडारों में होने से प्रकट रूप संसार में नहीं फैलीं परन्तु अब इन का प्रकाश देश को

मैं उस दवा से मेटूं दुःख जग के प्राणियों का ।
और भ्रम सब मिटादूं दिल से अयानियों का ॥

२

रह करके ब्रह्मचारी विद्या करूं मैं हासिल ।
आलिम बनूं मैं पूरा हरएक फन में कामिल ॥
होकर धर्म का माहिर हरइक अमल का आमिल ।
चक्खूं चक्खाऊं सबको गुण ज्ञान के सरस फल ॥
रक्षा करू मैं अपने बल वीर्य की निभा कर ।
सेवा करूं धर्म की मैं जिस्मो जां लगा कर ॥

३

अर्जुन सा बल हो मुझ में और भीम सी हो ताकत ।
अकलङ्क सी हो हिम्मत निःकलङ्क सी शजायत ॥
श्रीपाल जैसी स्थिरता और राम जैसी इज्जत ।
विष्णु सा प्रेम मुझमें लक्ष्मण सी हो मुहब्बत ॥
उस कृष्ण जैसी मुझ में हां दानवीरता हो ।
गज सुख माल जैसी हां ध्यान धीरता हो ॥

४

सादी गिजा हो मेरी सादा चलन हो मेरा ।
मैं हूं वतन का प्यारा प्यारा वतन हो मेरा ॥

सच्चा सगुन हो मेरा पक्का प्रण हो मेरा ।
आदर्श जिन्दगी हो आत्म मनन हो मेरा ॥
दुनिया के प्राणियों मे ऐसा मेरा निबाह हो ।
मुझ को भी इनकी चाह हो इनको भी मेरी चाह हो ॥

४

दुनिया के बीच करदूं सुख ज्ञान का उजारा ।
और दूर सब भगादूं अज्ञान का अंधेरा ॥
मैं सब को एक करदूं आत्म का रस चखा कर ।
वाणी पवित्र सब को महावीर की सुना कर ॥
ज्योति मैं यह करूंगा तन मन लगा के अपना ।
सेवा करूं धर्म की सब कुछ लगा के अपना ॥

आवश्यक सूचनायें ।

(१) जैन धर्म आत्मा का निज स्वभाव है और ऐसे भाव उसी के द्वारा सुख सम्पादन किया जासका है—

(२) सुख मोक्ष में ही है जिसको कि प्राप्त करके

नोट—सब विद्यार्थियों को इसे कण्ठस्थ करके नित्य प्रति पढ़ना चाहिये ।

यह अनादि कर्म मल से संसार चतुर्गति में परि भ्रमण करने वाला अशुद्ध और दुखी आत्मा निज परमात्म-स्वरूप को प्राप्त कर सदैव आनन्द में मग्न रहा करता है—

(३) स्मरण रक्खो कि मोक्ष मांगने और किसी के देने से नहीं मिलती उसकी प्राप्ति हमारी पूर्ण वीतरागता और पुरुषार्थ से कर्म्म मल और उनके कारण नष्ट करलेने पर ही अवलम्बित है—

(४) स्याद्वाद सत्यता का स्वरूप है और वस्तु के अनन्त धर्म्मों का यथार्थ कथन करसक्ता है—

(५) जैनधर्म ही परमात्मा का उपदेश है क्योंकि पूर्वापर विरोध और पक्षपात रहित सब जीवों को उनके कल्याण का उपदेश देता है और उसी के परमात्मा की सिद्धि और छाप इस संसार में है—

(६) एकमात्र 'ही' और 'भी' यही अन्य धर्म्म और जैनधर्म्म का भेद है यदि उन सब के भाव और उपदेश की इयता की 'ही' 'भी' से बदल दी जाय तो उन्हीं सबका समुदाय जैनधर्म्म है—

(७) अब समझो कि जैनधर्म्म किसी सम्प्रदाय विशेष का ही धर्म्म है या होसकता है मनुष्यों को तो क्या कौन भी प्राणी इसको स्वयोग्यतानुसार धारण कर स्वरूप सिद्ध कल्याण कर सकता है—

(८) जैनधर्म्म के समस्त तत्त्व और उपदेश वस्तु स्वरूप प्राकृतिक नियम न्यायशास्त्र शब्दानुशासन और विज्ञान सिद्धान्त के अनुसार होनेके कारण सत्य है—

(९) सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशक देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसा मंगलरूप शास्त्र ही जीव का यथार्थ उपदेश दे सकते हैं और उनके समझने का सौभाग्य एकमात्र जैनधर्म्म को ही प्राप्त है—

(१०) समस्त दुःखों से उद्धार करने वाली जैनधर्म्म दीक्षा ही है यदि उसकी शक्ति न हो तो भी ऐसा करके अन्याय और अभक्ष्य का त्याग करके मुख्य मार्ग द्वारा क्रमशः स्वपर कल्याण करते रहना चाहिये।

सत्रहवां पाठ ।

(धर्म प्रचार विषय)

प्रिय सज्जनों ! जब तक धर्म प्रचार नहीं होता तब तक लोग सदाचारी नहीं बन सकते अतएव सदाचार की प्रवृत्ति के लिये धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है ।

विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि देश कालज्ञ हो कर धर्म शिक्षाओं द्वारा प्राणियों को सदाचार में प्रवृत्ति कराते रहें यावन्मात्र संसार भर में अन्याय व्यभिचार की प्रवृत्ति दृष्टि गोचर हो रही है यह सब धर्म प्रचार के न होने के ही कारण से है जब धर्म प्रचार न्याय पूर्वक किया जाये तब उक्त प्रवृत्तियें अल्पतर हो जायें अपितु धर्म प्रचार के जिन २ साधनों की आवश्यकता है वे साधन देश कालानुसार प्रयुक्त करने से सफलता को प्राप्त हो जाते हैं ।

अब उन साधनों के विषय में यत्किंचित् लिखते हैं जैसे कि—"उपदेशक" सदाचार में रत धर्मात्मा पूर्ण

विद्वान् समयज्ञ समय और पर मत के पूर्ण वेत्ता सत्य वादी मृदु भाषी प्रत्येक प्राणी से प्रेम भाव से बर्ताव करने वाले आपत्ति आ जाने पर भी धर्म में दृढ़ जिस भाषा की सभा हो उसी भाषा में उपदेश करने वाले इत्यादि गुण युक्त उपदेशकों द्वारा जब धर्म प्रचार कर पाया जावे तब सफलता शीघ्र हो जाती है क्योंकि यद्यपि न्याय आदि शास्त्रों में उपदेशकों के अनेक गुण वर्णन किये गये हैं किन्तु उन गुणों में भी दो गुण मुख्यता में रहते हैं जैसे कि—"सत्य" और "शील" यह दो गुण प्रत्येक उपदेशक में होने चाहियें यावत्काल उपदेशक जन सत्यवादी और ब्रह्मचारी न होंगे तावत्काल पर्यन्त उन का उपदेश श्रोताओं के चित्तों को आकर्षित नहीं कर सकता अतएव प्रत्येक उपदेशक को प्रथम अपने मन पर विजय पा लेने के पश्चात् इस काम में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

आज कल जो पुष्कल उपदेश के होने पर भी यथेष्ट सफलता होती हुई दृष्टि गोचर नहीं होती उस का मूल कारण उपदेशकों के ज्ञान दर्शन और चारित्र की न्यूनता

ही है जब यह तीनों गुण उपदेशकों में ठीक हो जायें तब उपदेश की सफलता भी शीघ्र हो जायगी समाज को उपदेशकों के चारित्र पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

पुस्तकें" द्वितीय साधन धर्म प्रचार का पुस्तकों द्वारा होता है बहुत से सज्जन जन पुस्तकों के पठन से धर्म प्राप्ति कर सकते हैं जैसे कि—जैन सूत्रों में भी लिखा है सूत्र रुचि श्रुत के अध्ययन करने से हो जाती है जब विधी पूर्वक श्रुत का अध्यन व स्वाध्याय किया जायगा तब भी धर्म की प्राप्ति हो सकती है जैसे जब श्री देवर्द्धि क्षमा श्रमण जी महाराज जी ने ९८० में सूत्रों को पत्रों पर आरूढ़ किया आज उसी का फल है कि जैन मत का अस्तित्व पाया जाता है और उन्हीं सूत्रों के आधार से जैन आचार्यों ने लाखों जैन ग्रन्थों का निर्माण किया जो कि आज कल प्रखर विद्वानों के मान मर्दन करने वाले हैं और जैन तत्त्व को भली प्रकार से प्रदर्शित कर रहे हैं अतएव देश कालानुसार पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों द्वारा भी धर्म प्रचार भली भांति हो जाता है किन्तु पुस्तकों और समाचार पत्रों के सम्पादक पूर्ण

विद्वान् स्वमत और पर मत के पूर्ण वेत्ता नम्र हर्षी मृदु भाषी प्रत्येक प्राणी से प्रेम भाव से वर्ताव करने वाले आपत्ति आ जाने पर भी धर्म में दृढ़ जिस भाषा की सभा हो उसी भाषा में उपदेश करने वाले इत्यादि गुण युक्त उपदेशकों द्वारा जब धर्म प्रचार कर वाया जावे तब सफलता शीघ्र हो जाती है क्योंकि यद्यपि न्याय आदि शास्त्रों में उपदेशकों के अनेक गुण वर्णन किये गये हैं किन्तु उन गुणों में भी दो गुण मुख्यता में रहते हैं जैसे कि—"सत्य" और "शील" यह दो गुण प्रत्येक उपदेशक में होने चाहियें यावत्काल उपदेशक जन सत्यवादी और ब्रह्मचारी न होंगे तावत्काल पर्यन्त उन का उपदेश श्रोताओं के चित्तों को आकर्षित नहीं कर सकता अतएव प्रत्येक उपदेशक को प्रथम अपने मन पर विजय पा लेने के पश्चात् इस काम में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

आज कल जो पुष्कल उपदेश के होने पर भी यथेष्ट सफलता होती हुई दृष्टि गोचर नहीं होती उस का मूल कारण उपदेशकों के ज्ञान दर्शन और चारित्र की न्यूनता

जैसे श्रीभगवत् की वाणी अर्द्ध मागधी भाषा में होने पर भी जो श्रोताओं की भाषा होती है वह उसी में परिणत हो जाती है इस कथन से स्वतः ही सिद्ध हो-गया कि जो श्रोताओं व देशियों की वाणी हो उसी में पुस्तकें और धार्मिक समाचार पत्रों से लाभ विशेष हो जाता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये शुद्ध पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों की अत्यन्त आवश्यकता है इनके न होने से धर्म प्रचार में बाधा अत्यन्त हो रही है।

व्यवसाय सभा, धर्म प्रचार के लिये प्रसिद्ध नगरों में पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जब पुस्तक संग्रह ही नहीं है तब जिज्ञासु जन किस प्रकार से लाभ उठा सकते हैं अतः यत्न और विनय पूर्वक शास्त्रों का संग्रह वा अन्य पुस्तकों का संग्रह जब तक नहीं होता तबतक धर्म प्रचार में विघ्न उपस्थित होते रहते हैं बहुत से मुमुक्षु जन इस प्रकार के भी हैं जो निज व्यय से पुस्तक मंगवाने में प्रमाद करते हैं वा असमर्थ हैं तथा अपने मत से भिन्न मतों की पुस्तकें मंगवाने में उनके

विद्वान् सच्चरित्र वाले होने चाहियें क्योंकि पुस्तकों और समाचार पत्रों द्वारा जिस प्रकार धर्म प्रचार हो सकता है उसी प्रकार इन से अधर्म प्रचार भी हो सकता है इस लिये इन के सम्पादक विद्वान् और शुद्ध चारित्र वाले होने चाहियें साथ ही वे अपनी बुद्धि में पक्षपात को तिलाञ्जली देकर इस काम में यदि प्रवृत्त होंगे तब वे यथेष्ट लाभ की प्राप्ति कर सकते हैं यदि वे कदाचार में लगे रहेंगे तब उन का परिश्रम सदाचार के अतिरिक्त कदाचार की प्रवृत्ति कर डालेगा अपितु यदि उक्त अवगुण वाले सम्पादकों द्वारा कोई लेख विद्यार्थियों के पढ़ने में आजावे तब विद्यार्थियों का पाठ है कि वे अपनी बुद्धि में हेय (त्यागने योग्य) ज्ञेय (जानने योग्य) उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों का ध्यान रक्खें जो कि धर्मोत्तर उस लेख का प्रभाव हो न पड़सके अतएव सिद्ध हुआ कि जब तक पुस्तक और धार्मिक समाचार पत्र नहीं होंगे तब तक धर्मोन्नति के साधनों में न्यूनता अवश्य ही रहेगी इनके द्वारा यह न्यूनता दूर हो सकती है अपितु पुस्तकों का प्रचार प्रत भाषा में होने से वालों को धर्म बोध शीघ्र हो जाता है

में आना नही चाहते वे धर्म लाभ नहीं उठा सकते इस लिये सब लोगों में धर्म प्रचार हो इस आशा से प्रेरित हो कर व्याख्यान का प्रबन्ध ऐसे स्थान में होना चाहिये जहां पर बिना रोक टोक के जनता आ सके और उन में धर्म प्रचार भली प्रकार हो सके अपितु साधुओं वा उपदेशकों को ऐसे ग्रामों वा नगरों में जाना योग्य है जहां पर धर्म प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता हो क्योंकि वर्तमानकाल में ऐसा देखा जाता है कि श्रोता-गणों की उपदेशक जनही प्रायः प्रतीक्षा करते रहते हैं किन्तु श्रोता गण उपदेशकों की प्रतिक्षा विशेष नहीं करते जब ऐसे क्षेत्रों में धर्म प्रचार करना चाहें तो यथेष्ट फल की प्राप्ति होनी दुसाध्य प्रतीत होती है अतएव जिन क्षेत्रों में धर्म प्रचार की आवश्यकता हो उन्हीं क्षेत्रों में धर्म प्रचार के लिये विशेष प्रबन्ध करना चाहिये तब ही धर्मोन्नति हो सकती है।

"पाठशालाएं" धर्म प्रचार के लिये धार्मिक संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि जबतक बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती तबतक वे धर्म से अपरि-

मन में संकोच रखता है किन्तु जब उनको किसी पुस्तकालय का सहारा मिल जाय तो वे पठन करने में प्रमाद नहीं करते उनमें बहुत से भद्र जन ऐसे भी होते हैं जो उन सूत्रों वा ग्रन्थों को पढ़कर धर्म से परिचित हो जाते हैं तथा यदि किसी कारण से किसी उपदेशक का शास्त्रार्थ नियत हो जाय तब उस समय उस पुस्तकालय से पर्याप्त सहायता मिल सकती है स्वाध्याय प्रेमियों को तो पुस्तकालय एक स्वर्गीय भूमि प्रतीत होती है किन्तु इसका प्रबन्ध ऐसे सुयोग्य विद्वान् पुरुषों द्वारा होना चाहिये जो कि इस कार्य के पूर्ण वेत्ता हों शास्त्रोद्धार से जीव कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष तक भी पहुंच सकता है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये पुस्तकालय भी एक मुख्य साधन है।

"व्याख्यान" जनता में प्रभावशाली व्याख्यानों का होना भी धर्म प्रचार का मुख्यांग है क्योंकि जो व्याख्यान शैली भिन्न स्थानों में प्रचलित हो रही है उसमें शिक्षित के भावगण ही लाभ उठा सकते हैं किन्तु जो पुरुष उस स्थान से अनभिज्ञ हैं वा किसी कारण से उस स्थान

"प्रेम" धर्म प्रचार के लिये सबसे प्रेम करना चाहिये यदि कोई अज्ञात जन असभ्य वर्ताव भी करे तो उसे सहन शक्ति द्वारा शान्ति पूर्वक सहन करना चाहिये विपक्षियों के प्रश्नों के उत्तर सभ्यता पूर्वक देने चाहियें किन्तु प्रश्नोत्तर में किसी के चित्त दुखाने वाले उप-हास्यादि कृत्य न करने चाहियें क्योंकि जब प्रश्नोत्तर में हास्यादि क्रियायें की जाती हैं तब उस की क्षुद्र वृत्ति प्रतीत होती है किन्तु गम्भीरता सिद्ध नहीं होती इस लिये सभ्यता पूर्वक सब से वर्ताव होना चाहिये अपितु ऐसे विचार न होने चाहियें कि यह तो जैनेतर हैं इन से सभ्यता की क्या आवश्यकता है यह क्षुद्र वृत्ति वाले पुरुषों के विचार होते हैं गांभीर्य गुण वाले जीव प्राणी मात्र से सभ्य व्यवहार करते हैं यही मनुष्यत्व का लक्षण है तथा जब किसी से प्रेम ही नहीं है और न ही सभ्य वर्ताव है तो भला धर्म प्रचार की वहां पर क्या आशा की जा सकती है अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये सब से प्रेम करते हुये किसी से भी असभ्य वर्ताव न करना चाहिये अपितु प्रत्येक प्राणी के साथ सहानु-

चित ही रहते हैं इतना ही नहीं किन्तु वे समय पाकर नास्तिकता में फंस जाते हैं इसलिये बच्चों के कोमल हृदयों पर पहले से ही धर्म शिक्षाओं का बीज अङ्कुर उत्पन्न करदेने चाहिये जो माता पिता अपने प्रिय पुत्र पुत्रियों को धर्म शिक्षाओं से वंचित रखते हैं वे वास्तविक में अपनी संतान के हितैषी नहीं हैं न वे माता पिता कहलाने के योग्य ही हैं क्योंकि उन्होंने अपने प्रिय पुत्र और पुत्रियों के जीवन को उच्च कोटि के बनाने का प्रयत्न नहीं किया जिससे वे अपने जीवन में उन्नति के फल देखने में असमर्थ ही रहजाते हैं और धर्म शिक्षा के न होने के कारण से ही उनकी प्यारी संतान जूआ मांस मदिरा शिकार परस्त्री संग वेश्या गमन चोरी आदि कुकर्मों में फंसी हुई जब वे देखते हैं तब परम दुःखित होते हैं और संतान भी अपने माता पिता के साथ असभ्य बर्ताव करने लग जाती है जिस व्यवहार को लोग देख भी नहीं सकते यह सब धार्मिक शिक्षा न होने के ही हेतु हैं अतएव सिद्ध हुआ कि धर्म प्रचार के लिये धार्मिक संस्थाओं की अत्यन्त आवश्यकता है।

प्रिय सुहृद्वर्ग ! यह पुस्तक श्रीमान् श्री चन्द्रजी अम्बाला निवासी की पवित्र स्मृति मे मुद्रित की गई है।

आपका जन्म विक्रमाब्द १६३१ आश्विन शुक्ला ११ बुधवार और स्वर्गवास का समय १६७४ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा है। आप जैन धर्म के बड़े हितैषी थे, आप की जैन मुनियों पर असीम भक्ति थी आप धर्म-स्नेही थे, उदार थे तथा अपने स्थान पर मुख्य थे आप के सुयोग्य पुत्रों ने आप का नाम सदैव रखने के लिये इस पुस्तक को अपने व्यय से मुद्रित करवाके धर्म परिचय दिया है जिस का अनुकरण प्रत्येक गृहस्थ को करना चाहिये।

सूचना—इस शिक्षावली में लिखी गई शिक्षाएं अध्यापक गण कृपा करके बच्चों को बड़े प्रेम से समझावें क्योंकि उन का हृदय अति कोमल होता है।